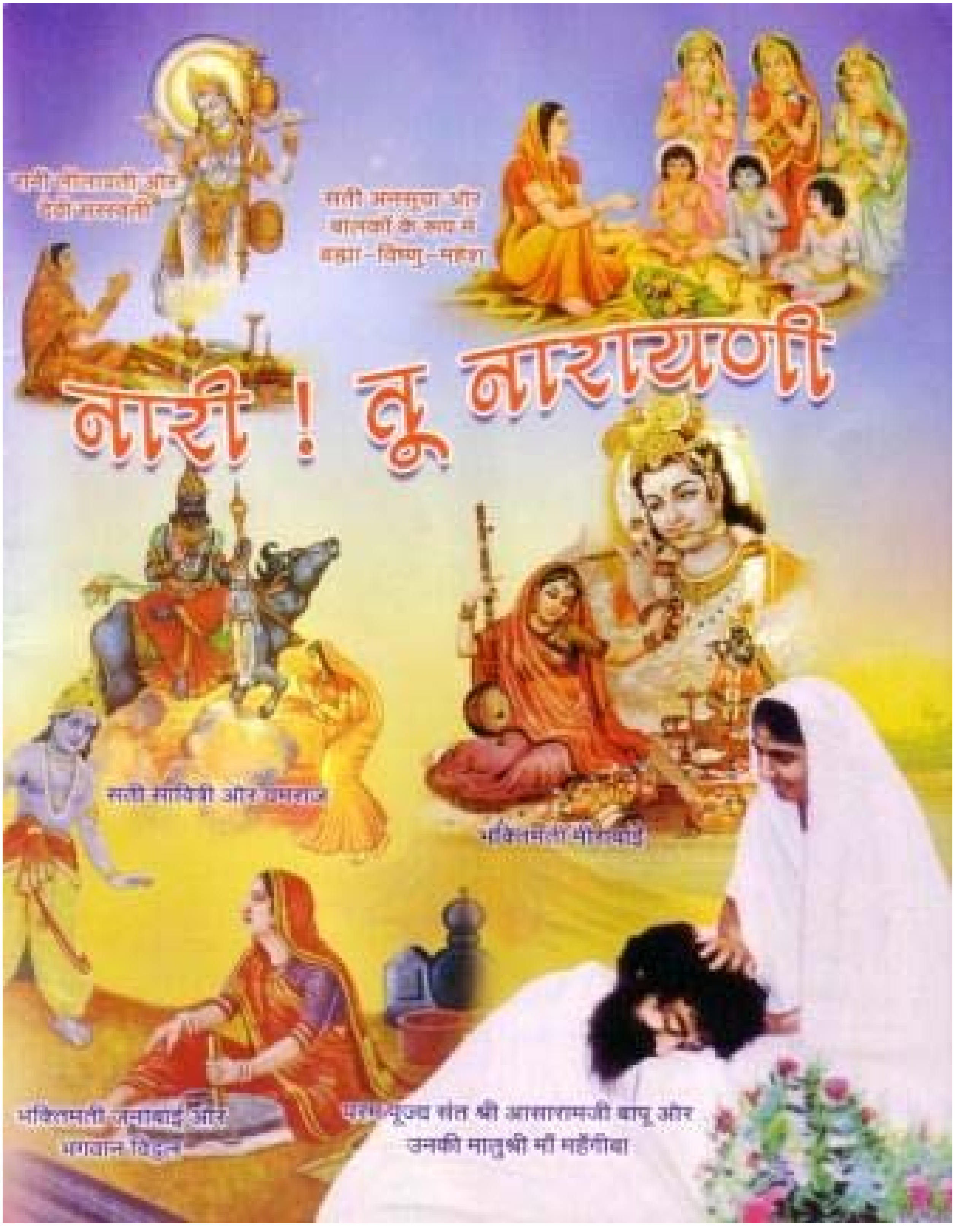
नारी ! तू नारायणी

प्रस्तावना ....

यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता।

'जिस कुल में स्त्रियों का आदर है वहाँ देवता प्रसन्न रहते हैं।'

इस प्रकार शास्त्रों में नारी की महिमा बतायी गयी है। भारतीय समाज में नारी का एक विशिष्ट व गौरवपूर्ण स्थान है। वह भोग्य नहीं है बल्कि पुरुष को भी शिक्षा देने योग्य चरित्र बरत सकती है। अगर वह अपने चरित्र और साधना में दृढ़ तथा उत्साही बन जाय तो अपने माता, पिता, पति, सास और श्वसुर की भी उद्धारक हो सकती है।

धर्म (आचारसंहिता) की स्थापना भले आचार्यों ने की, पर उसे सँभाले रखना, विस्तारित करना और बच्चों में उसके संस्कारों का सिंचन करना – इन सबका श्रेय नारी को जाता है। भारतीय संस्कृति ने स्त्री को माता के रूप में स्वीकार करके यह बात प्रसिद्ध की है कि नारी पुरुष के कामोपभोग की सामग्री नहीं बल्कि वंदनीय, पूजनीय है।

इस पुस्तक में परम पूज्य संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचनों से आदर्श नारियों के कुछ ऐसे जीवन-प्रसंग संग्रहित किये गये हैं कि नारियाँ यदि इस चयन का बार-बार अवलोकन करेंगी तो उन्हें अवश्य लाभ होगा।

श्री योग वेदान्त सेवा समिति

सतं श्री आसारामजी आश्रम, अमदावाद।

अनुक्रम

संयमनिष्ठ सुयशा 5

अदभुत आभासम्पन्न रानी कलावती 13

उत्तम जिज्ञासुः मैत्रेयी 15

ब्रह्मवादिनी विदुषी गार्गी 17

अथाह शक्ति की धनीः तपस्विनी शाण्डालिनी 19

सती सावित्री 20

माँ सीता की सतीत्व-भावना 22

आर्त भक्त द्रौपदी 22

दैवी शक्तियों से सम्पन्न गुणमंजरी देवी 24

विवेक की धनीः कर्मावती 26

वास्तविक सौन्दर्य 39

आत्मविद्या की धनीः फुलीबाई 43

आनंदीबाई की दृढ़ श्रद्धा 48

कर्माबाई की वात्सल्य-भक्ति 50

साध्वी सिरमा 51

मुक्ताबाई का सर्वत्र विट्ठल-दर्शन 56

रतनबाई की गुरुभक्ति 58

ब्रह्मलीन श्री माँ महँगीबा 60

मेरी माँ का दिव्य गुरुभाव 60

'प्रभु ! मुझे जाने दो....' 61

इच्छाओं से परेः माँ महँगीबा 62

जीवन में कभी फरियाद नहीं.... 63

बीमारों के प्रति माँ की करूणा 63

'कोई कार्य घृणित नहीं है....' 64

ऐसी माँ के लिए शोक किस बात का? 64

अम्मा की गुरुनिष्ठा 66

स्वावलंबन एवं परदुःखकातरता 66

अम्मा में माँ यशोदा जैसा भाव 67

देने की दिव्य भावना 67

गरीब कन्याओं के विवाह में मदद 68

अम्मा का उत्सव प्रेम 68

प्रत्येक वस्तु का सदुपयोग होना चाहिए 69

अहं से परे 69

मीराबाई की गुरुभक्ति 70

राजकुमारी मल्लिका बनी तीर्थंकर मल्लियनाथ 72

दुर्गादास की वीर जननी 73

कर्मनिष्ठ श्यामो 74

शक्तिस्वरूपा माँ आनंदमयी 75

अभाव का ही अभाव 79

माँ अंजना का सामर्थ्य 80

लज्जावासो भूषणं शुद्धशीलं पादक्षेपो धर्ममार्गे च यस्या।
नित्यं पत्युः सेवनं मिष्टवाणी धन्या सा स्त्री पूतयत्येव पृथ्वीम्।।

'जिस स्त्री का लज्जा ही वस्त्र तथा विशुद्ध भाव ही भूषण हो, धर्ममार्ग में जिसका प्रवेश हो, मधुर वाणी बोलने का जिसमें गुण हो वह पतिसेवा-परायण श्रेष्ठ नारी इस पृथ्वी को पवित्र करती है।' भगवान शंकर महर्षि गर्ग से कहते हैः 'जिस घर में सर्वगुणसंपन्ना नारी सुखपूर्वक निवास करती है, उस घर में लक्ष्मी निवास करती है। हे वत्स ! कोटि देवता भी उस घर को नहीं छोड़ते।'

नारी का हृदय कोमल और स्निग्ध हुआ करता है। इसी वजह से वह जगत की पालक, माता के स्वरूप में हमेशा स्वीकारी गयी है। 'ब्रह्मवैवर्त पुराण' के गणेष खण्ड के 40 वें अध्याय में आया हैः

जनको जन्मदातृत्वात् पालनाच्च पिता स्मृतः।
गरीयान् जन्मदातुश्च योऽन्दाता पिता मुने।।
तयोः शतगुणे माता पूज्या मान्या च वन्दिता।
गर्भधारणपोषाभ्यां सा च ताभ्यां गरीयसी।।

'जन्मदाता और पालनकर्ता होने के कारण सब पूज्यों में पूज्यतम जनक और पिता कहलाता है। जन्मदाता से भी अन्नदाता पिता श्रेष्ठ है। इनसे भी सौगुनी श्रेष्ठ और वंदनीया माता है, क्योंकि वह गर्भधारण तथा पोषण करती है।'

इसलिए जननी एवं जन्मभूमि को स्वर्ग से भी श्रेष्ठ बताते हुए कहा गया हैः **जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी।**

संयमनिष्ठ सुयशा

अमदावाद की घटित घटना हैः

विक्रम संवत् 17 वीं शताब्दी में कर्णावती (अमदावाद) में युवा राजा पुष्पसेन का राज्य था। जब उसकी सवारी निकलती तो बाजारों में लोग कतारबद्ध खड़े रहकर उसके दर्शन करते। जहाँ किसी सुन्दर युवती पर उसकी नजर पड़ती तब मंत्री को इशारा मिल जाता। रात्रि को वह सुन्दरी महल में पहुँचायी जाती। फिर भले किसी की कन्या हो अथवा दुल्हन !

एक गरीब कन्या, जिसके पिता का स्वर्गवास हो गया था। उसकी माँ चक्की चलाकर अपना और बेटी का पेट पालती थी। वह स्वयं भी कथा सुनती और अपनी पुत्री को भी सुनाती। हक और परिश्रम की कमाई, एकादशी का व्रत और भगवन्नाम-जप, इन सबके कारण 16 वर्षीया कन्या का शरीर बड़ा सुगठित था और रूप लावण्य का तो मानों, अंबार थी ! उसका नाम था सुयशा।

सबके साथ सुयशा भी पुष्पसेन को देखने गयी। सुयशा का ओज तेज और रूप लावण्य देखकर पुष्पसेन ने अपने मंत्री को इशारा किया। मंत्री ने कहाः "जो आज्ञा।"

मंत्री ने जाँच करवायी। पता चला कि उस कन्या का पिता है नहीं, माँ गरीब विधवा है। उसने सोचाः 'यह काम तो सरलता से हो जायेगा।'

मंत्री ने राजा से कहाः "राजन् ! लड़की को अकेले क्या लाना? उसकी माँ से साथ ले आयें। महल के पास एक कमरे में रहेंगी, झाड़ू-बुहारी करेंगी, आटा पीसेंगी। उनको केवल खाना देना है।"

मंत्री ने युक्ति से सुयशा की माँ को महल में नौकरी दिलवा दी। इसके बाद उस लड़की को महल में लाने की युक्तियाँ खोजी जाने लगीं। उसको बेशर्मी के वस्त्र दिये। जो वस्त्र कुकर्म करने के लिए वेश्याओं को पहनकर तैयार रहना होता है, मंत्री ने ऐसे वस्त्र भेजे और कहलवायाः "राजा साहब ने कहा हैः सुयशा ! ये वस्त्र पहन कर आओ। सुना है कि तुम भजन अच्छा गाती हो अतः आकर हमारा मनोरंजन करो।"

यह सुनकर सुयशा को धक्का लगा ! जो बूढ़ी दासी थी और ऐसे कुकर्मों में साथ देती थी, उसने सुयशा को समझाया कि "ये तो राजाधिराज हैं, पुष्पसेन महाराज हैं। महाराज के महल में जाना तेरे लिए सौभाग्य की बात है।" इस तरह उसने और भी बातें कहकर सुयशा को पटाया।

सुयशा कैसे कहती कि 'मैं भजन गाना नहीं जानती हूँ। मैं नहीं आऊँगी...' राज्य में रहती है और महल के अंदर माँ काम करती है। माँ ने भी कहाः "बेटी ! जा। यह वृद्धा कहती है तो जा।"

सुयशा ने कहाः "ठीक है। लेकिन कैसे भी करके ये बेशर्मी के वस्त्र पहनकर तो नहीं जाऊँगी।

सुयशा सीधे-सादे वस्त्र पहनकर राजमहल में गयी। उसे देखकर पुष्पसेन को धक्का लगा कि 'इसने मेरे भेजे हुए कपड़े नहीं पहने?' दासी ने कहाः "दूसरी बार समझा लूँगी, इस बार नहीं मानी।"

सुयशा का सुयश बाद में फैलेगा, अभी तो अधर्म का पहाड़ गिर रहा था.... धर्म की नन्हीं-सी मोमबत्ती पर अधर्म का पहाड़...! एक तरफ राजसत्ता की आँधी है तो दूसरी तरफ धर्मसत्ता की लौ ! जैसे रावण की राजसत्ता और विभीषण की धर्मसत्ता, दुर्योधन की राजसत्ता और विदुर की धर्मसत्ता ! हिरण्यकशिपु की राजसत्ता और प्रह्लाद की धर्मसत्ता ! धर्मसत्ता और राजसत्ता टकरायी। राजसत्ता चकनाचूर हो गयी और धर्मसत्ता की जय-जयकार हुई और हो रही है ! विक्रम राणा और मीरा.... मीरा की धर्म में दृढ़ता थी। राणा राजसत्ता के बल पर मीरा पर हावी होना चाहता था। दोनों टकराये और विक्रम राणा मीरा के चरणों में गिरा !

धर्मसत्ता दिखती तो सीधी सादी है लेकिन उसकी नींव पाताल में होती है और सनातन सत्य से जुड़ी होती है जबकि राजसत्ता दिखने में बड़ी आडम्बरवाली होती है लेकिन भीतर ढोल की पोल की तरह होती है।

राजदरबार के सेवक ने कहाः "राजाधिराज महाराज पुष्पसेन की जय हो ! हो जाय गाना शुरु।"

पुष्पसेनः "आज तो हम केवल सुयशा का गाना सुनेंगे।"

दासी ने कहाः "सुयशा ! गाओ, राजा स्वयं कह रहे हैं।"

राजा के साथी भी सुयशा का सौन्दर्य नेत्रों के द्वारा पीने लगे और राजा के हृदय में काम-विकार पनपने लगा। सुयशा राजा के दिये वस्त्र पहनकर नहीं आयी, फिर भी उसके शरीर का गठन और ओज-तेज बड़ा सुन्दर लग रहा था। राजा भी सुयशा को चेहरे को निहारे जा रहा था।

कन्या सुयशा ने मन-ही-मन प्रभु से प्रार्थना कीः 'प्रभु ! अब तुम्हीं रक्षा करना।'

आपको भी जब धर्म और अधर्म के बीच निर्णय करना पड़े तो धर्म के अधिष्ठानस्वरूप परमात्मा की शरण लेना। वे आपका मंगल ही करते हैं। उन्हींसे पूछना कि 'अब मैं क्या करूँ? अधर्म के आगे झुकना मत। परमात्मा की शरण जाना।

दासी ने सुयशा से कहाः "गाओ, संकोच न करो, देर न करो। राजा नाराज होंगे, गाओ।"

परमात्मा का स्मरण करके सुयशा ने एक राग छेड़ाः

कब सुमिरोगे राम? साधो ! कब सुमिरोगे राम?
अब तुम कब सुमिरोगे राम?
बालपन सब खेल गँवायो, यौवन में काम।
साधो ! कब सुमिरोगे राम? कब सुमिरोगे राम?

पुष्पसेन के मुँह पर मानों, थप्पड़ लगा।

सुयशा ने आगे गायाः

हाथ पाँव जब कंपन लागे, निकल जायेंगे प्राण।

कब सुमिरोगे राम? साधो ! कब सुमिरोगे राम?
झूठी काया झूठी माया, आखिर मौत निशान।
कहत कबीर सुनो भई साधो, जीव दो दिन का मेहमान।
कब सुमिरोगे राम? साधो ! कब सुमिरोगे राम?

भावयुक्त भजन से सुयशा का हृदय तो राम रस से सराबोर हो गया लेकिन पुष्पसेन के रंग में भंग पड़ गया। वह हाथ मसलता ही रह गया। बोलाः 'ठीक है, फिर देखता हूँ।'

सुयशा ने विदा ली। पुष्पसेन ने मंत्रियों से सलाह ली और उपाय खोज लिया कि 'अब होली आ रही है उस होलिकोत्सव में इसको बुलाकर इसके सौन्दर्य का पान करेंगे।'

राजा ने होली पर सुयशा को फिर से वस्त्र भिजवाये और दासी से कहाः "कैसे भी करके सुयशा को यही वस्त्र पहनाकर लाना है।"

दासी ने बीसों ऊँगिलयों का जोर लगाया। माँ ने भी कहाः "बेटी ! भगवान तेरी रक्षा करेंगे। मुझे विश्वास है कि तू नीच कर्म करने वाली लड़कियों जैसा न करेगी। तू भगवान की, गुरु की स्मृति रखना। भगवान तेरा कल्याण करें।"

महल में जाते समय इस बार सुयशा ने कपड़े तो पहन लिये लेकिन लाज ढाँकने के लिए ऊपर एक मोटी शाल ओढ़ ली। उसे देखकर पुष्पसेन को धक्का तो लगा, लेकिन यह भी हुआ कि 'चलो, कपड़े तो मेरे पहनकर आयी है।' राजा ऐसी-वैसी युवतियों से होली खेलते-खेलते सुयशा की ओर आया और उसकी शाल खींची। 'हे राम' करके सुयशा आवाज करती हुई भागी। भागते-भागते माँ की गोद में आ गिरी। "माँ, माँ ! मेरी इज्जत खतरे में है। जो प्रजा का पालक है वही मेरे धर्म को नष्ट करना चाहता है।"

माँः "बेटी ! आग लगे इस नौकरी को।" माँ और बेटी शोक मना रहे हैं। इधर राजा बौखला गया कि 'मेरा अपमान....! मैं देखता हूँ अब वह कैसे जीवित रहती है?' उसने अपने एक खूँखार आदमी कालू मियाँ को बुलवाया और कहाः "कालू ! तुझे स्वर्ग की उस परी सुयशा का खात्मा करना है। आज तक तुझे जिस-जिस व्यक्ति को खत्म करने को कहा है, तू करके आया है। यह तो तेरे आगे मच्छर है मच्छर है ! कालू ! तू मेरा खास आदमी है। मैं तेरा मुँह मोतियों से भर दूँगा। कैसे भी करके सुयशा को उसके राम के पास पहुँचा दे।"

कालू ने सोचाः 'उसे कहाँ पर मार देना ठीक होगा?.... रोज प्रभात के अँधेरे में साबरमती नदी में स्नान करने जाती है.... बस, नदी में गला दबोचा और काम खत्म...'जय साबरमती' कर देंगे।'

कालू के लिए तो बायें हाथ का खेल था लेकिन सुयशा का इष्ट भी मजबूत था। जब व्यक्ति का इष्ट मजबूत होता है तो उसका अनिष्ट नहीं हो सकता।

मैं सबको सलाह देता हूँ कि आप जप और व्रत करके अपना इष्ट इतना मजबूत करो कि बड़ी-से-बड़ी राजसत्ता भी आपका अनिष्ट न कर सके। अनिष्ट करने वाले के छक्के छूट जायें और वे भी आपके इष्ट के चरणों में आ जायें... ऐसी शक्ति आपके पास है।

कालू सोचता हैः 'प्रभात के अँधेरे में साबरमती के किनारे... जरा सा गला दबोचना है, बस। छुरा मारने की जरूरत ही नहीं है। अगर चिल्लायी और जरूरत पड़ी तो गले में जरा-सा छुरा भौंककर 'जय साबरमती' करके

रवाना कर दूँगा। जब राजा अपना है तो पुलिस की ऐसी-तैसी... पुलिस क्या कर सकती है? पुलिस के अधिकारी तो जानते हैं कि राजा का आदमी है।'

कालू ने उसके आने-जाने के समय की जानकारी कर ली। वह एक पेड़ की ओट में छुपकर खड़ा हो गया। ज्यों ही सुयशा आयी और कालू ने झपटना चाहा त्यों ही उसको एक की जगह पर दो सुयशा दिखाई दीं। 'कौन सी सच्ची? ये क्या? दो कैसे? तीन दिन से सारा सर्वेक्षण किया, आज दो एक साथ ! खैर, देखता हूँ, क्या बात है? अभी तो दोनों को नहाने दो....' नहाकर वापस जाते समय उसे एक ही दिखी तब कालू हाथ मसलता है कि 'वह मेरा भ्रम था।'

वह ऐसा सोचकर जहाँ शिवलिंग था उसी के पास वाले पेड़ पर चढ़ गया कि 'वह यहाँ आयेगी अपने बाप को पानी चढ़ाने... तब 'या अल्लाह' करके उस पर कूदूँगा और उसका काम तमाम कर दूँगा।'

उस पेड़ से लगा हुआ बिल्वपत्र का भी एक पेड़ था। सुयशा साबरमती में नहाकर शिवलिंग पर पानी चढ़ाने को आयी। हलचल से दो-चार बिल्वपत्र गिर पड़े। सुयशा बोलीः "हे प्रभु ! हे महादेव ! सुबह-सुबह ये जिस बिल्वपत्र जिस निमित्त से गिरे हैं, आज के स्नान और दर्शन का फल मैं उसके कल्याण के निमित्त अर्पण करती हूँ। मुझे आपका सुमिरन करके संसार की चीज नहीं पानी, मुझे तो केवल आपकी भक्ति ही पानी है।"

सुयशा का संकल्प और उस क्रूर-कातिल के हृदय को बदलने की भगवान की अनोखी लीला !

कालू छलाँग मारकर उतरा तो सही लेकिन गला दबोचने के लिए नहीं। कालू ने कहाः "लड़की ! पुष्पसेन ने तेरी हत्या करने का काम मुझे सौंपा था। मैं खुदा की कसम खाकर कहता हूँ कि मैं तेरी हत्या के लिए छुरा तैयार करके आया था लेकिन तू... अनदेखे घातक का भी कल्याण करना चाहती है ! ऐसी हिन्दू कन्या को मारकर मैं खुदा को क्या मुँह दिखाऊँगा? इसलिए आज से तू मेरी बहन है। तू तेरे भैया की बात मान और यहाँ से भाग जा। इससे तेरी भी रक्षा होगी और मेरी भी। जा, ये भोले बाबा तेरी रक्षा करेंगे। जिन भोले बाबा तेरी रक्षा करेंगे, जा, जल्दी भाग जा...."

सुयशा को कालू मियाँ के द्वारा मानों, उसका इष्ट ही कुछ प्रेरणा दे रहा था। सुयशा भागती-भागती बहुत दूर निकल गयी।

जब कालू को हुआ कि 'अब यह नहीं लौटेगी...' तब वह नाटक करता हुआ राजा के पास पहुँचाः "राजन ! आपका काम हो गया वह तो मच्छर थी... जरा सा गला दबाते ही 'मे SSS' करती रवाना हो गयी।"

राजा ने कालू को ढेर सारी अशर्फियाँ दीं। कालू उन्हें लेकर विधवा के पास गया और उसको सारी घटना बताते हुए कहाः "माँ ! मैंने तेरी बेटी को अपनी बहन माना है। मैं क्रूर, कामी, पापी था लेकिन उसने मेरा दिल बदल दिया। अब तू नाटक कर की हाय, मेरी बेटी मर गयी... मर गयी..' इससे तू भी बचेगी, तेरी बेटी भी बचेगी और मैं भी बचूँगा।

तेरी बेटी की इज्जत लूटने का षड्यंत्र था, उसमें तेरी बेटी नहीं फँसी तो उसकी हत्या करने का काम मुझे सौंपा था। तेरी बेटी ने महादेव से प्रार्थना की कि 'जिस निमित्त ये बिल्वपत्र गिरे हैं उसका भी कल्याण हो, मंगल हो।' माँ ! मेरा दिल बदल गया है। तेरी बेटी मेरी बहन है। तेरा यह खूँखार बेटा तुझे प्रार्थना करता है कि

तू नाटक कर लेः 'हाय रेsss ! मेरी बेटी मर गयी। वह अब मुझे नहीं मिलेगी, नदी में डूब गयी...' ऐसा करके तू भी यहाँ से भाग जा।"

सुयशा की माँ भाग निकली। उस कामी राजा ने सोचा कि मेरे राज्य की एक लड़की... मेरी अवज्ञा करे ! अच्छा हुआ मर गयी ! उसकी माँ भी अब ठोकरें खाती रहेगी... अब सुमरती रहे वही राम ! **कब सुमिरोगे राम? साधो ! कब सुमिरोगे राम? झूठी काया झूठी माया आखिर मौत निशान ! कब सुमिरोगे राम? साधो ! सब सुमिरोगे राम? हा हा हा हा sss...'**

मजाक-मजाक में गाते-गाते भी यह भजन उसके अचेतन मन में गहरा उतर गया... कब सुमिरोगे राम?

उधर सुयशा को भागते-भागते रास्ते में माँ काली का एक छोटा-सा मंदिर मिला। उसने मंदिर में जाकर प्रणाम किया। वहाँ की पुजारिन गौतमी ने देखा कि क्या रूप है, क्या सौन्दर्य है और कितनी नम्रता !' उसने पूछाः "बेटी ! कहाँ से आयी हो?"

सुयशा ने देखा कि एक माँ तो छूटी, अब दूसरी माँ बड़े प्यार से पूछ रही है... सुयशा रो पड़ी और बोलीः "मेरा कोई नहीं है। अपने प्राण बचाने के लिए मुझे भागना पड़ा।" ऐसा कहकर सुयशा ने सब बता दिया।

गौतमीः "ओ हो sss... मुझे संतान नहीं थी। मेरे भोले बाबा ने, मेरी काली माँ ने मेरे घर 16 वर्ष की पुत्री भेज दी।" बेटी... बेटी ! कहकर गौतमी ने सुयशा को गले लगा लिया और अपने पति कैलाशनाथ को बताया कि "आज हमें भोलानाथ ने 16 वर्ष की सुन्दरी कन्या दी है। कितनी पवित्र है। कितनी भक्ति भाववाली है।"

कैलाशनाथः "गौतमी ! पुत्री की तरह इसका लालन-पालन करना, इसकी रक्षा करना। अगर इसकी मर्जी होगी तो इसका विवाह करेंगे नहीं तो यहीं रहकर भजन करे।"

जो भगवान का भजन करते हैं उनको विघ्न डालने से पाप लगता है।

सुयशा वहीं रहने लगी। वहाँ एक साधु आता था। साधु भी बड़ा विचित्र था। लोग उसे 'पागलबाबा' कहते थे। पागलबाबा ने कन्या को देखा तो बोल पड़ेः हूँsss..."

गौतमी घबरायी कि "एक शिकंजे से निकलकर कहीं दूसरे में....? पागलबाबा कहीं उसे फँसा न दे.... हे भगवान ! इसकी रक्षा करना।" स्त्री का सबसे बड़ा शत्रु है उसका सौन्दर्य एवं श्रृंगार दूसरा है उसकी असावधानी। सुयशा श्रृंगार तो करती नहीं थी, असावधान भी नहीं थी लेकिन सुन्दर थी।

गौतमी ने अपने पति को बुलाकर कहाः

"देखो, ये बाबा बार-बार अपनी बेटी की तरफ देख रहे हैं।"

कैलाशनाथ ने भी देखा। बाबा ने लड़की को बुलाकर पूछाः "क्या नाम है?"

"सुयशा।"

"बहुत सुन्दर हो, बड़ी खूबसूरत हो।"

पुजारिन और पुजारी घबराये।

बाबा ने फिर कहाः "बड़ी खूबसूरत है।"

कैलाशनाथः "महाराज ! क्या है?"

"बड़ी खूबसूरत है।"

"महाराज आप तो संत आदमी हैं।"

"तभी तो कहता हूँ कि बड़ी खूबसूरत है, बड़ी होनहार है। मेरी होगी तू?"

पुजारिन-पुजारी और घबराये कि 'बाबा क्या कह रहे हैं? पागल बाबा कभी कुछ कहते हैं वह सत्य भी हो जाता है। इनसे बचकर रहना चाहिए। क्या पता कहीं....'

कैलाशनाथः "महाराज ! क्या बोल रहे हैं।"

बाबा ने सुयशा से फिर पूछाः "तू मेरी होगी?"

सुयशाः "बाबा मैं समझी नहीं।"

"तू मेरी साधिका बनेगी? मेरे रास्ते चलेगी?"

"कौन-सा रास्ता?"

"अभी दिखाता हूँ। माँ के सामने एकटक देख.... माँ ! तेरे रास्ते ले जा रहा हूँ, चलती नहीं है तो तू समझा माँ, माँ !"

लड़की को लगा कि 'ये सचमुच पागल हैं।'

'चल' करके दृष्टि से ही लड़की पर शक्तिपात कर दिया। सुयशा के शरीर में स्पंदन होने लगा, हास्य आदि अष्टसात्त्विक भाव उभरने लगे।

पागलबाबा ने कैलाशनाथ और गौतमी से कहाः "यह बड़ी खूबसूरत आत्मा है। इसके बाह्य सौन्दर्य पर राजा मोहित हो गया था। यह प्राण बचाकर आयी है और बच पायी है। तुम्हारी बेटी है तो मेरी भी तो बेटी है। तुम चिन्ता न करो। इसको घर पर अलग कमरे में रहने दो। उस कमरे में और कोई न जाय। इसकी थोड़ी साधना होने दो फिर देखो क्या-क्या होता है? इसकी सुषुप्त शक्तियों को जगने दो। बाहर से पागल दिखता हूँ लेकिन 'गल' को पाकर घूमता हूँ, बच्चे।"

"महाराज आप इतने सामर्थ्य के धनी हैं यह हमें पता नहीं था। निगाहमात्र से आपने संप्रेक्षण शक्ति का संचार कर दिया।"

अब तो सुयशा का ध्यान लगने लगा। कभी हँसती है, कभी रोती है। कभी दिव्य अनुभव होते हैं। कभी प्रकाश दिखता है, कभी अजपा जप चलता है कभी प्राणायाम से नाड़ी-शोधन होता है। कुछ ही दिनों में मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपुर केन्द्र जाग्रत हो गये।

मूलाधार केन्द्र जागृत हो तो काम राम में बदलता है, क्रोध क्षमा में बदलता है, भय निर्भयता में बदलता है, घृणा प्रेम में बदलती है। स्वाधिष्ठान केन्द्र जागृत होता है तो कई सिद्धियाँ आती हैं। मणिपुर केन्द्र जाग्रत हो तो अपढ़े, अनसुने शास्त्र को जरा सा देखें तो उस पर व्याख्या करने का सामर्थ्य आ जाता है।

आपके से ये सभी केन्द्र अभी सुषुप्त हैं। अगर जग जायें तो आपके जीवन में भी यह चमक आ सकती है। हम स्कूली विद्या तो केवल तीसरी कक्षा तक पढ़े हैं लेकिन ये केन्द्र खुलने के बाद देखो, लाखों-करोड़ों लोग सत्संग सुन रहे हैं, खूब लाभान्वित हो रहे हैं। इन केन्द्रों में बड़ा खजाना भरा पड़ा है।

इस तरह दिन बीते..... सप्ताह बीते.. महीने बीते। सुयशा की साधना बढ़ती गयी.... अब तो वह बोलती है तो लोगों के हृदयों को शांति मिलती है। सुयशा का यश फैला.... यश फैलते-फैलते साबरमती के जिस पार से वह आयी थी, उस पार पहुँचा। लोग उसके पास आते-जाते रहे..... एक दिन कालू मियाँ ने पूछाः "आप लोग इधर से उधर उस पार जाते हो और एक दो दिन के बाद आते हो क्या बात है?"

लोगों ने बतायाः "उस पार माँ भद्रकाली का मंदिर है, शिवजी का मंदिर है। वहाँ पागलबाबा ने किसी लड़की से कहाः 'तू तो बहुत सुन्दर है, संयमी है।' उस पर कृपा कर दी ! अब वह जो बोलती है उसे सुनकर हमें बड़ी शांति मिलती है, बड़ा आनंद मिलता है।"

"अच्छा, ऐसी लड़की है?"

"उसको लड़की-लड़की मत कहो कालू मियाँ ! लोग उसको माता जी कहते हैं। पुजारिन और पुजारी भी उसको 'माताजी-माताजी कहते हैं। क्या पता कहाँ से वह स्वर्ग को देवी आयी है?"

"अच्छा तो अपन भी चलते हैं।"

कालू मियाँ ने आकर देखा तो.... "जिस माताजी को लोग मत्था टेक रहे हैं वह वही सुयशा है, जिसको मारने के लिए मैं गया था और जिसने मेरा हृदय परिवर्तित कर दिया था।"

जानते हुए भी कालू मियाँ अनजान होकर रहा, उसके हृदय को बड़ी शांति मिली। इधर पुष्पसेन को मानसिक खिन्नता, अशांति और उद्वेग हो गया। भक्त को कोई सताता है तो उसका पुण्य नष्ट हो जाता है, इष्ट कमजोर हो जाता है और देर-सवेर उसका अनिष्ट होना शुरु हो जाता है।

संत सताये तीनों जायें तेज, बल और वंश।

पुष्पसेन को मस्तिष्क का बुखार आ गया। उसके दिमाग में सुयशा की वे ही पंक्तियाँ घूमने लगीं-

कब सुमिरोगे राम? साधो ! कब सुमिरोगे राम....

उन पंक्तियों को गाते-गाते वह रो पड़ा। हकीम, वैद्य सबने हाथ धो डाले और कहाः "राजन ! अब हमारे वश की बात नहीं है।"

कालू मियाँ को हुआः 'यह चोट जहाँ से लगी है वहीं से ठीक हो सकती है।' कालू मिलने गया और पूछाः "राजन् ! क्या बात है?"

"कालू ! कालू ! वह स्वर्ग की परी कितना सुन्दर गाती थी। मैंने उसकी हत्या करवा दी। मैं अब किसको बताऊँ? कालू ! अब मैं ठीक नहीं हो सकता हूँ। कालू ! मेरे से बहुत बड़ी गलती हो गयी !"

"राजन ! अगर आप ठीक हो जायें तो?"

"अब नहीं हो सकता। मैंने उसकी हत्या करवा दी है, कालू उसने कितनी सुन्दर बात कही थीः

झूठी काया झूठी माया आखिर मौत निशान !
कहत कबीर सुनो भई साधो, जीव दो दिन का मेहमान।
कब सुमिरोगे राम? साधो ! कब सुमिरोगे राम?

और मैंने उसकी हत्या करवा दी। कालू ! मेरा दिल जल रहा है। कर्म करते समय पता नहीं चलता, कालू ! बाद में अन्दर की लानत से जीव तप मरता है। कर्म करते समय यदि यह विचार किया होता तो ऐसा नहीं होता। कालू ! मैंने कितने पाप किये हैं।"

कालू का हृदय पसीजा की इस 'राजा को अगर उस देवी की कृपा मिल जाये तो ठीक हो सकता है। वैसे यह राज्य तो अच्छा चलाना जानता है, दबंग है। पापकर्म के कारण इसको जो दोष लगा है वह अगर धुल जाये तो....'

कालू बोलाः "राजन् ! अगर वह लड़की कहीं मिल जाये तो?"

"कैसे मिलेगी?"

"जीवनदान मिले तो मैं बताऊँ। अब वह लड़की, लड़की नहीं रही। पता नहीं, साबरमती माता ने उसको कैसे गोद में ले लिया और वह जोगन बन गयी है। लोग उसके कदमों में अपना सिर झुकाते हैं।"

"हैं.... क्या बोलता है? जोगन बन गयी है? वह मरी नहीं है?"

"नहीं।"

"तूने तो कहा था मर गयी?"

"मैंने तो गला दबाया और समझा मर गयी होगी लेकिन आगे निकल गयी, कहीं चली गयी और किसी साधु बाबा की मेहरबानी हो गयी और मेरे को लगता है कि रूपये में 15 आना पक्की बात है कि वही सुयशा है। जोगन का और उसका रूप मिलता है।"

"कालू ! मुझे ले चल। मैं उसके कदमों में अपने दुर्भाग्य को सौभाग्य में बदलना चाहता हूँ। कालू ! कालू!"

राज पहुँचा और उसने पश्चात्ताप के आँसुओं से सुयशा के चरण धो दिये। सुयशा ने कहाः "भैया ! इन्सान गलतियों का घर है, भगवान तुम्हारा मंगल करें।"

पुष्पसेनः "देवी ! मेरा मंगल भगवान कैसे करेंगे? भगवान मंगल भी करेंगे तो किसी गुरु के द्वारा। देवी ! तू मेरी गुरु है, मैं तेरी शरण आया हूँ।"

राजा पुष्पसेन सुयशा के चरणों में गिरा। वही सुयशा का प्रथम शिष्य बना। पुष्पसेन को सुयशा ने गुरुमंत्र की दीक्षा दी। सुयशा की कृपा पाकर पुष्पसेन भी धनभागी हुआ और कालू भी ! दूसरे लोग भी धनभागी हुए। 17वीं शताब्दी का कर्णावती शहर जिसको आज अमदावाद बोलते हैं, वहाँ की यह एक ऐतिहासिक घटना है, सत्य कथा है।

अगर उस 16 वर्षीय कन्या में धर्म के संस्कार नहीं होते तो नाच-गान करके राजा का थोड़ा प्यार पाकर स्वयं भी नरक में पच मरती और राजा भी पच मरता। लेकिन उस कन्या ने संयम रखा तो आज उसका शरीर तो नहीं है लेकिन सुयशा का सुयश यह प्रेरणा जरूर देता है कि आज की कन्याएँ भी अपने ओज-तेज और संयम की रक्षा करके, अपने ईश्वरीय प्रभाव को जगाकर महान आत्मा हो सकती हैं।

हमारे देश की कन्याएँ परदेशी भोगी कन्याओं का अनुकरण क्यों करें? लाली-लिपस्टिक लगायी... 'बॉयकट' बाल कटवाये... शराब-सिगरेट पी.... नाचा-गाया... धत् तेरे की ! यह नारी स्वातंत्र्य है? नहीं, यह तो नारी का शोषण है। नारी स्वातंत्र्य के नाम पर नारी को कुटिल कामियों की भोग्या बनाया जा रहा है।

नारी 'स्व' के तंत्र हो, उसको आत्मिक सुख मिले, आत्मिक ओज बढ़े, आत्मिक बल बढ़े, ताकि वह स्वयं को महान बने ही, साथ ही औरों को भी महान बनने की प्रेरणा दे सके... अंतरात्मा का, स्व-स्वरूप का सुख मिले, स्व-स्वरूप का ज्ञान मिले, स्व-स्वरूप का सामर्थ्य मिले तभी तो नारी स्वतंत्र है। परपुरुष से पटायी जाय तो स्वतंत्रता कैसी? विषय विलास की पुतली बनायी जाये तो स्वतन्त्रता कैसी?

कब सुमिरोगे राम?.... संत कबीर के इस भजन ने सुयशा को इतना महान बना दिया कि राजा का तो मंगल किया ही... साथ ही कालू जैसे कातिल हृदय भी परिवर्तित कर दिया.. और न जाने कितनों को ईश्वर की ओर लगाया होगा, हम लोग गिनती नहीं कर सकते। जो ईश्वर के रास्ते चलता है उसके द्वारा कई लोग अच्छे बनते हैं और जो बुरे रास्ते जाता है उसके द्वारा कइयों का पतन होता है।

आप सभी सदभागी हैं कि अच्छे रास्ते चलने की रूचि भगवान ने जगायी। थोड़ा-बहुत नियम ले लो, रोज थोड़ा जप करो, ध्यान करे, मौन का आश्रय लो, एकादशी का व्रत करो.... आपकी भी सुषुप्त शक्तियाँ जाग्रत कर दें, ऐसे किसी सत्पुरुष का सहयोग लो और लग जाओ। फिर तो आप भी ईश्वरीय पथ के पथिक बन जायेंगे, महान परमेश्वरीय सुख को पाकर धन्य-धन्य हो जायेंगे।

(इस प्रेरणापद सत्संग कथा की ऑडियो कैसेट एवं वी.सी.डी. - **'सुयशाः कब सुमिरोगे राम?'** नाम से उपलब्ध है, जो अति लोकप्रिय हो चुकी है। आप इसे अवश्य सुनें देखें। यह सभी संत श्री आसारामजी आश्रमों एवं समितियों के सेवा केन्द्रों पर उपलब्ध है।)

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

अनुक्रम

अदभुत आभासम्पन्न रानी कलावती

'स्कन्द पुराण' के ब्रह्मोत्तर खंड में कथा आती है कि 'काशीनरेश की कन्या कलावती के साथ मथुरा के दाशार्ह नामक राजा का विवाह हुआ। विवाह के बाद राजा ने रानी को अपने पलंग पर बुलाया लेकिन उसने इन्कार कर दिया। तब राजा ने बल प्रयोग की धमकी दी। रानी ने कहाः "स्त्री के साथ संसार-व्यवहार करना हो तो बलप्रयोग नहीं, स्नेह प्रयोग करना चाहिए। नाथ ! मैं भले आपकी रानी हूँ, लेकिन आप मेरे साथ बलप्रयोग करके संसार-व्यवहार न करें।"

लेकिन वह राजा था। रानी की बात सुनी-अनसुनी करके नजदीक गया। ज्यों ही उसने रानी का स्पर्श किया, त्यों ही उसे विद्युत जैसा करंट लगा। उसका स्पर्श करते ही राजा का अंग-अंग जलने लगा। वह दूर हटा और बोलाः "क्या बात है? तुम इतनी सुन्दर और कोमल हो फिर भी तुम्हारे शरीर के स्पर्श से मुझे जलन होने लगी?"

रानीः "नाथ ! मैंने बाल्यकाल में दुर्वासा ऋषि से शिवमंत्र लिया था। उसे जपने से मेरी सात्त्विक ऊर्जा का विकास हुआ है, इसीलिए मैं आपके नजदीक नहीं आती थी। जैसे अंधेरी रात और दोपहर एक साथ नहीं रहते, वैसे ही आपने शराब पीनेवाली वेश्याओं के साथ और कुलटाओं के साथ जो संसार-भोग भोगे हैं उससे आपके पाप के कण आपके शरीर, मन तथा बुद्धि में अधिक हैं और मैंने जप किया है उसके कारण मेरे शरीर में ओज, तेज व आध्यात्मिक कण अधिक हैं। इसीलिए मैं आपसे थोड़ी दूर रहकर प्रार्थना करती थी। आप बुद्धिमान हैं, बलवान हैं, यशस्वी हैं और धर्म की बात भी आपने सुन रखी है, लेकिन आपने शराब पीनेवाली वेश्याओं और कुलटाओं के साथ भोग भी भोगे हैं।"

राजाः "तुम्हें इस बात का पता कैसे चल गया?"

रानीः "नाथ ! हृदय शुद्ध होता है तो यह ख्याल आ जाता है।"

राजा प्रभावित हुआ और रानी से बोलाः "तुम मुझे भी भगवान शिव का वह मंत्र दे दो।"

रानीः "आप मेरे पति हैं, मैं आपकी गुरु नहीं बन सकती। आप और हम गर्गाचार्य महाराज के पास चलें।"

दोनों गर्गाचार्य के पास गये एवं उनसे प्रार्थना की। गर्गाचार्य ने उन्हें स्नान आदि से पवित्र होने के लिए कहा और यमुना तट पर अपने शिवस्वरूप के ध्यान में बैठकर उन्हें निगाह से पावन किया, फिर शिवमंत्र देकर शांभवी दीक्षा से राजा के ऊपर शक्तिपात किया।

कथा कहती है कि देखते ही देखते राजा के शरीर से कोटि-कोटि कौए निकल-निकल कर पलायन करने लगे। काले कौए अर्थात् तुच्छ परमाणु। काले कर्मों के तुच्छ परमाणु करोड़ों की संख्या में सूक्ष्मदृष्टि के द्रष्टाओं द्वारा देखे गये। सच्चे संतों के चरणों में बैठकर दीक्षा लेने वाले सभी साधकों को इस प्रकार के लाभ होते ही हैं। मन, बुद्धि में पड़े हुए तुच्छ कुसंस्कार भी मिटते हैं। आत्म-परमात्मप्राप्ति की योग्यता भी निखरती है। व्यक्तिगत जीवन में सुख शांति, सामाजिक जीवन में सम्मान मिलता है तथा मन-बुद्धि में सुहावने संस्कार भी पड़ते हैं और भी अनगिनत लाभ होते हैं जो निगुरे, मनमुख लोगों की कल्पना में भी नहीं आ सकते। मंत्रदीक्षा के प्रभाव से हमारे पाँचों शरीरों के कुसंस्कार व काले कर्मों के परमाणु क्षीण होते जाते हैं। थोड़ी ही देर में राजा निर्भार हो गया एवं भीतर के सुख से भर गया।

शुभ-अशुभ, हानिकारक एवं सहायक जीवाणु हमारे शरीर में रहते हैं। जैसे पानी का गिलास होंठ पर रखकर वापस लायें तो उस पर लाखों जीवाणु पाये जाते हैं यह वैज्ञानिक अभी बोलते हैं। लेकिन शास्त्रों ने तो लाखों वर्ष पहले ही कह दियाः

सुमति-कुमति सबके उर रहहिं।

जब आपके अंदर अच्छे विचार रहते हैं तब आप अच्छे काम करते हैं और जब भी हलके विचार आ जाते हैं तो आप न चाहते हुए भी गलत कर बैठते हैं। गलत करने वाला कई बार अच्छा भी करता है तो मानना पड़ेगा कि मनुष्य-शरीर पुण्य और पाप का मिश्रण है। आपका अंतःकरण शुभ और अशुभ का मिश्रण है। जब आप लापरवाह होते हैं तो अशुभ बढ़ जाते हैं अतः पुरुषार्थ यह करना है कि अशुभ क्षीण होता जाय और शुभ पराकाष्ठा तक परमात्म-प्राप्ति तक पहुँच जाय।

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

अनुक्रम

लोग घरबार छोड़कर साधना करने के लिए साधु बनते हैं। घर में रहते हुए, गृहस्थधर्म निभाते हुए नारी ऐसी उग्र साधना कर सकती है कि अन्य साधुओं की साधना उसके सामने फीकी पड़ जाय। ऐसी देवियों के पास एक पतिव्रता-धर्म ही ऐसा अमोघ शस्त्र है, जिसके सम्मुख बड़े-बड़े वीरों के शस्त्र भी कुण्ठित हो जाते हैं। पतिव्रता स्त्री अनायास ही योगियों के समान सिद्धि प्राप्त कर लेती है, इसमें किंचित् मात्र भी संदेह नहीं है।

उत्तम जिज्ञासुः मैत्रेयी

महर्षि याज्ञवल्क्यजी की दो पत्नियाँ थीः मैत्रेयी और कात्यायनी। मैत्रेयी ज्येष्ठ थी। कात्यायनी की प्रज्ञा सामान्य स्त्रियों जैसी ही थी किंतु मैत्रेयी ब्रह्मवादिनी थी।

एक दिन याज्ञवाल्क्यजी ने अपनी दोनों पत्नियों को अपने पास बुलाया और कहाः "मेरा विचार अब संन्यास लेने का है। अतः इस स्थान को छोड़कर मैं अन्यत्र चला जाऊँगा। इसके लिए तुम लोगों की अनुमति लेना आवश्यक है। साथ ही, मैं यह भी चाहता हूँ कि घर में जो कुछ धन-दौलत है उसे तुम दोनों में बराबर-बराबर बाँट दूँ ताकि मेरे चले जाने के बाद इसको लेकर आपसी विवाद न हो।"

यह सुनकर कात्यायनी तो चुप रही किंतु मैत्रेयी ने पूछाः "भगवन् ! यदि यह धन-धान्य से परिपूर्ण सारी पृथ्वी केवल मेरे ही अधिकार में आ जाय तो क्या मैं उससे किसी प्रकार अमर हो सकती हूँ?"

याज्ञवल्क्यजी ने कहाः "नहीं। भोग-सामग्रियों से संपन्न मनुष्यों का जैसा जीवन होता है, वैसा ही तुम्हारा भी जीवन हो जायेगा। धन से कोई अमर हो जाय, उसे अमरत्व की प्राप्ति हो जाय, यह कदापि संभव नहीं है।"

तब मैत्रेयी ने कहाः "भगवन् ! जिससे मैं अमर नहीं हो सकती उसे लेकर क्या करूँगी? यदि धन से ही वास्तविक सुख मिलता तो आप उसे छोड़कर एकान्त अरण्य में क्यों जाते? आप ऐसी कोई वस्तु अवश्य जानते हैं, जिसके सामने इस धन एवं गृहस्थी का सारा सुख तुच्छ प्रतीत होता है। अतः मैं भी उसी को जानना चाहती हूँ। **यदेव भगवान वेद तदेव मे ब्रूहि।** केवल जिस वस्तु को आप श्रीमान अमरत्व का साधन जानते हैं, उसी का मुझे उपदेश करें।"

मैत्रेयी की यह जिज्ञासापूर्ण बात सुनकर याज्ञवल्क्यजी को बड़ी प्रसन्नता हुई। उन्होंने मैत्रेयी की प्रशंसा करते हुए कहाः

"धन्य मैत्रेयी ! धन्य ! तुम पहले भी मुझे बहुत प्रिय थी और इस समय भी तुम्हारे मुख से यह प्रिय वचन ही निकला है। अतः आओ, मेरे समीप बैठो। मैं तुम्हें तत्त्व का उपदेश करता हूँ। उसे सुनकर तुम उसका मनन और निदिध्यासन करो। मैं जो कुछ कहूँ, उस पर स्वयं भी विचार करके उसे हृदय में धारण करो।"

इस प्रकार कहकर महर्षि याज्ञवल्क्यजी ने उपदेश देना आरंभ कियाः "मैत्रेयी ! तुम जानती हो कि स्त्री को पति और पति को स्त्री क्यों प्रिय है? इस रहस्य पर कभी विचार किया है? पति इसलिए प्रिय नहीं है कि वह पति है, बल्कि इसलिए प्रिय है कि वह अपने को संतोष देता है, अपने काम आता है। इसी प्रकार पति को स्त्री भी इसलिए प्रिय नहीं होती कि वह स्त्री है, अपितु इसलिए प्रिय होती है कि उससे स्वयं को सुख मिलता। इसी न्याय से पुत्र, धन, ब्राह्मण, क्षत्रिय, लोक, देवता, समस्त प्राणी अथवा संसार के संपूर्ण पदार्थ भी आत्मा के लिए प्रिय होने से ही प्रिय जान पड़ते हैं। अतः सबसे प्रियतम वस्तु क्या है? अपना आत्मा।

आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मन्तव्यो
निदिध्यासितव्यो मैत्रेयी आत्मनो वा अरे दर्शनेन श्रवणेन
मत्या विज्ञानेनेदं सर्वं विदितम्।

मैत्रेयी ! तुम्हें आत्मा की ही दर्शन, श्रवण, मनन और निदिध्यासन करना चाहिए। उसी के दर्शन, श्रवण, मनन और यथार्थज्ञान से सब कुछ ज्ञात हो जाता है।"

(बृहदारण्यक उपनिषद् 4-6)

तदनंतर महर्षि याज्ञवल्क्यजी ने भिन्न-भिन्न दृष्टान्तों और युक्तियों के द्वारा ब्रह्मज्ञान का गूढ उपदेश देते हुए कहाः "जहाँ अज्ञानावस्था में द्वैत होता है, वहीं अन्य अन्य को सूँघता है, अन्य अन्य का रसास्वादन करता है, अन्य अन्य का स्पर्श करता है, अन्य अन्य का अभिवादन करता है, अन्य अन्य का मनन करता है और अन्य अन्य को विशेष रूप से जानता है। किंतु जिसके लिए सब कुछ आत्मा ही हो गया है, वह किसके द्वारा किसे देखे? किसके द्वारा किसे सुने? किसके द्वारा किसे सूँघे? किसके द्वारा किसका रसास्वादन करे? किसके द्वारा किसका स्पर्श करे? किसके द्वारा किसका अभिवादन करे और किसके द्वारा किसे जाने? जिसके द्वारा पुरुष इन सबको जानता है, उसे किस साधन से जाने?

इसलिए यहाँ 'नेति-नेति' इस प्रकार निर्देश किया गया है। आत्मा अग्राह्य है, उसको ग्रहण नहीं किया जाता। वह अक्षर है, उसका क्षय नहीं होता। वह असंग है, वह कहीं आसक्त नहीं होता। वह निर्बन्ध है, वह कभी बन्धन में नहीं पड़ता। वह आनंदस्वरूप है, वह कभी व्यथित नहीं होता। हे मैत्रेयी ! विज्ञाता को किसके द्वारा जानें? अरे मैत्रेयी ! तुम निश्चयपूर्वक इसे समझ लो। बस, इतना ही अमरत्व है। तुम्हारी प्रार्थना के अनुसार मैंने ज्ञातव्य तत्त्व का उपदेश दे दिया।"

ऐसा उपदेश देने के पश्चात् याज्ञवल्क्यजी संन्यासी हो गये। मैत्रेयी यह अमृतमयी उपदेश पाकर कृतार्थ हो गयी। यही यथार्थ संपत्ति है जिसे मैत्रेयी ने प्राप्त किया था। धन्य है मैत्रेयी ! जो बाह्य धन-संपत्ति से प्राप्त सुख को तृणवत् समझकर वास्तविक संपत्ति को अर्थात् आत्म-खजाने को पाने का पुरुषार्थ करती है। काश ! आज की नारी मैत्रेयी के चरित्र से प्रेरणा लेती....

(कल्यान के नारी अंक एवं बृहदारण्यक उपनिषद् पर आधारित)

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

अनुक्रम

ब्रह्मवादिनी विदुषी गार्गी

ब्रह्मवादिनी विदुषी गार्गी का नाम वैदिक साहित्य में अत्यंत विख्यात है। उनका असली नाम क्या था, यह तो ज्ञात नहीं है किंतु उनके पिता का नाम वचक्नु था। अतः वचक्नु की पुत्री होने के कारण उनका नाम 'वाचक्नवी' पड़ गया। गर्ग गोत्र में उत्पन्न होने के कारण लोग उन्हें गार्गी कहते थे। यह गार्गी नाम ही जनसाधारण से प्रचलित हुआ।

'बृहदारण्यक उपनिषद् में गार्गी के शास्त्रार्थ का प्रसंग वर्णित हैः

विदेह देश के राजा जनक ने एक बहुत बड़ा ज्ञानयज्ञ किया था। उसमें कुरु और पांचाल देश के अनेकों विद्वान ब्राह्मण एकत्रित हुए थे। राजा जनक बड़े विद्या-व्यासंगी एवं सत्संगी थे। उन्हें शास्त्र के गूढ़ तत्त्वों का विवेचन एवं परमार्थ-चर्चा ही अधिक प्रिय थी। इसलिए उनके मन में यह जानने की इच्छा हुई कि यहाँ आये हुए विद्वान ब्राह्मणों में सबसे बढ़कर तात्त्विक विवेचन करने वाला कौन है? इस परीक्षा के लिए उन्होंने अपनी गौशाला में एक हजार गौएँ बँधवा दीं। सब गौओं के सींगों पर दस-दस पाद (एक प्राचीन माप-कर्ष) सुवर्ण बँधा हुआ था। यह व्यवस्था करके राजा जनक ने उपस्थित ब्राह्मण-समुदाय से कहाः

"आप लोगों में से जो सबसे बढ़कर ब्रह्मवेत्ता हो, वह इन सभी गौओं को ले जाये।"

राजा जनक की यह घोषणा सुनकर किसी भी ब्राह्मण में यह साहस नहीं हुआ कि उन गौओं को ले जाय। सब सोचने लगे कि 'यदि हम गौएँ ले जाने को आगे बढ़ते हैं तो ये सभी ब्राह्मण हमें अभिमानी समझेंगे और शास्त्रार्थ करने लगेंगे। उस समय हम इन सबको जीत सकेंगे या नहीं, क्या पता? यह विचार करते हुए सब चुपचाप ही बैठे रहे।

सबको मौन देखकर याज्ञवल्क्यजी ने अपने ब्रह्मचारी सामश्रवा से कहाः "हे सौम्य ! तू इन सब गौओं को हाँक ले चल।"

ब्रह्मचारी ने आज्ञा पाकर वैसा ही किया। यह देखकर सब ब्राह्मण क्षुब्ध हो उठे। तब विदेहराज जनक के होता अश्वल याज्ञवल्क्यजी से पूछ बैठेः "क्यों? क्या तुम्हीं ब्रह्मनिष्ठ हो? हम सबसे बढ़कर ब्रह्मवेत्ता हो?

यह सुनकर याज्ञवल्क्यजी ने नम्रतापूर्वक कहाः

"नहीं, ब्रह्मवेत्ताओं को तो हम नमस्कार करते हैं। हमें केवल गौओं की आवश्यकता है, अतः गौओं को ले जाते हैं।"

फिर क्या था? शास्त्रार्थ आरंभ हो गया। यज्ञ का प्रत्येक सदस्य याज्ञवल्क्यजी से प्रश्न पूछने लगा। याज्ञवाल्क्यजी इससे विचलित नहीं हुए। वे धैर्यपूर्वक सभी के प्रश्नों का क्रमशः उत्तर देने लगे। अश्वल ने चुन-चुनकर कितने ही प्रश्न किये, किंतु उचित उत्तर मिल जाने के कारण वे चुप होकर बैठ गये। तब जरत्कारू गोत्र में उत्पन्न आर्तभाग ने प्रश्न किया। उनको भी अपने प्रश्न का यथार्थ उत्तर मिल गया, अतः वे भी मौन हो गये। फिर क्रमशः लाह्यायनि भुज्यु, चाक्रायम उषस्त एवं कौषीतकेय कहोल प्रश्न करके चुप होकर बैठ गये। इसके बाद

वाचक्नवी गार्गी ने पूछाः "भगवन ! यह जो कुछ पार्थिव पदार्थ हैं, वे सब जल में ओत प्रोत हैं। जल किसमें ओतप्रोत है?

याज्ञवल्क्यजीः "जल वायु में ओतप्रोत है।"

"वायु किसमें ओतप्रोत है?"

"अन्तरिक्षलोक में।"

"अन्तरिक्षलोक किसमें ओतप्रोत है?"

"गन्धर्वलोक में।"

"गन्धर्वलोक किसमें ओतप्रोत है?"

"आदित्यलोक में।"

"आदित्यलोक किसमें ओतप्रोत है?"

"चन्द्रलोक में।"

"चन्द्रलोक किसमें ओतप्रोत है?"

नक्षत्रलोक में।"

"नक्षत्रलोक किसमें ओतप्रोत है?"

"देवलोक में।"

"देवलोक किसमें ओतप्रोत है?"

"इन्द्रलोक में।"

"इन्द्रलोक किसमें ओतप्रोत है?"

"प्रजापतिलोक में।"

"प्रजापतिलोक किसमें ओतप्रोत है?"

"ब्रह्मलोक में।"

"ब्रह्मलोक किसमें ओतप्रोत है?"

इस पर याज्ञवल्क्यजी ने कहाः "हे गार्गी ! यह तो अतिप्रश्न है। यह उत्तर की सीमा है। अब इसके आगे प्रश्न नहीं हो सकता। अब तू प्रश्न न कर, नहीं तो तेरा मस्तक गिर जायेगा।"

गार्गी विदुषी थीं। उन्होंने याज्ञवल्क्यजी के अभिप्राय को समझ लिया एवं मौन हो गयीं। तदनन्तर आरुणि आदि विद्वानों ने प्रश्नोत्तर किये। इसके पश्चात् पुनः गार्गी ने समस्त ब्राह्मणों को संबोधित करते हुए कहाः "यदि आपकी अनुमति प्राप्त हो जाय तो मैं याज्ञवल्क्यजी से दो प्रश्न पूछूँ। यदि वे उन प्रश्नों का उत्तर दे देंगे तो आप लोगों में से कोई भी उन्हें ब्रह्मचर्चा में नहीं जीत सकेगा।"

ब्राह्मणों ने कहाः "पूछ लो गार्गी !"

तब गार्गी बोलीः "याज्ञवल्क्यजी ! वीर के तीर के समान ये मेरे दो प्रश्न हैं। पहला प्रश्न हैः द्युलोक के ऊपर, पृथ्वी का निम्न, दोनों का मध्य, स्वयं दोनों और भूत भविष्य तथा वर्तमान किसमें ओतप्रोत हैं?"

याज्ञवल्क्यजीः "आकाश में।"

गार्गीः "अच्छा... अब दूसरा प्रश्नः यह आकाश किसमें ओतप्रोत है?"

याज्ञवल्क्यजीः "इसी तत्त्व को ब्रह्मवेत्ता लोग अक्षर कहते हैं। गार्गी यह न स्थूल है न सूक्ष्म, न छोटा है न बड़ा। यह लाल, द्रव, छाया, तम, वायु, आकाश, संग, रस, गन्ध, नेत्र, कान, वाणी, मन, तेज, प्राण, मुख और माप से रहित है। इसमें बाहर भीतर भी नहीं है। न यह किसी का भोक्ता है न किसी का भोग्य।"

फिर आगे उसका विशद निरूपण करते हुए याज्ञवल्क्यजी बोलेः "इसको जाने बिना हजारों वर्षों को होम, यज्ञ, तप आदि के फल नाशवान हो जाते हैं। यदि कोई इस अक्षर तत्त्व को जाने बिना ही मर जाय तो वह कृपण है और जान ले तो यह ब्रह्मवेत्ता है।

यह अक्षर ब्रह्म दृष्ट नहीं, द्रष्टा है। श्रुत नहीं, श्रोता है। मत नहीं, मन्ता है। विज्ञात नहीं, विज्ञाता है। इससे भिन्न कोई दूसरा द्रष्टा, श्रोता, मन्ता, विज्ञाता नहीं है। गार्गी ! इसी अक्षर में यह आकाश ओतप्रोत है।"

गार्गी याज्ञवल्क्यजी का लोहा मान गयी एवं उन्होंने निर्णय देते हुए कहाः "इस सभा में याज्ञवल्क्यजी से बढ़कर ब्रह्मवेत्ता कोई नहीं है। इनको कोई पराजित नहीं कर सकता। हे ब्राह्मणो ! आप लोग इसी को बहुत समझें कि याज्ञवल्क्यजी को नमस्कार करने मात्र से आपका छुटकारा हुए जा रहा है। इन्हें पराजित करने का स्वप्न देखना व्यर्थ है।"

राजा जनक की सभा ! ब्रह्मवादी ऋषियों का समूह ! ब्रह्मसम्बन्धी चर्चा ! याज्ञवल्क्यजी की परीक्षा और परीक्षक गार्गी ! यह हमारी आर्य के नारी के ब्रह्मज्ञान की विजय जयन्ती नहीं तो और क्या है?

विदुषी होने पर भी उनके मन में अपने पक्ष को अनुचित रूप से सिद्ध करने का दुराग्रह नहीं था। ये विद्वतापूर्ण उत्तर पाकर संतुष्ट हो गयीं एवं दूसरे की विद्वता की उन्होंने मुक्त कण्ठ से प्रशंसा भी की।

धन्य है भारत की आर्य नारी ! जो याज्ञवल्क्यजी जैसे महर्षि से भी शास्त्रार्थ करनें हिचकिचाती नहीं है। ऐसी नारी, नारी न होकर साक्षात् नारायणी ही है, जिनसे यह वसुन्धरा भी अपने-आपको गौरवान्वित मानती है।

('कल्याण' के 'नारी अंक' एवं बृहदारण्यक उपनिषद् पर आधारित)

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

अनुक्रम

अथाह शक्ति की धनीः तपस्विनी शाण्डालिनी

शाण्डालिनी का रूप-लावण्य और सौन्दर्य देखकर गालव ऋषि और गरूड़जी मोहित हो गये। 'ऐसी सुन्दरी और इतनी तेजस्विनी ! वह भी धरती पर तपस्यारत ! यह स्त्री तो भगवान विष्णु की भार्या होने के योग्य है....' ऐसा सोचकर उन्होंने शाण्डालिनी के आगे यह प्रस्ताव रखा।

शाण्डालिनीः "नहीं नहीं, मुझे तो ब्रह्मचर्य का पालन करना है।"

यह कहकर शाण्डालिनी पुनः तपस्यारत हो गयी और अपने शुद्ध-बुद्ध स्वरूप की ओर यात्रा करने लगी।

गालवजी और गरुड़जी का यह देखकर पुनः विचारने लगे कि 'अप्सराओं को भी मात कर देने वाले सौन्दर्य की स्वामिनी यह शाण्डालिनी अगर तपस्या में ही रत रही तो जोगन बन जायेगी और हम लोगों की बात मानेगी नहीं। अतः इसे अभी उठाकर ले चलें और भगवान विष्णु के साथ जबरन इसकी शादी करवा दें।'

एक प्रभात को दोनों शाण्डालिनी को ले जाने के लिए आये। शाण्डालिनी की दृष्टि जैसे ही उन दोनों पर पड़ी तो वह समझ गयी कि 'अपने लिए तो नहीं, किंतु अपनी इच्छा पूरी करने के लिए इनकी नीयत बुरी हुई है। जब मेरी कोई इच्छा नहीं है तो मैं किसी की इच्छा के आगे क्यों दबूँ? मुझे तो ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करना है किंतु ये दोनों मुझे जबरन गृहस्थी में घसीटना चाहते हैं। मुझे विष्णु की पत्नी नहीं बनना, वरन् मुझे तो निज स्वभाव को पाना है।'

गरुड़जी तो बलवान थे ही, गालवजी भी कम नहीं थे। किंतु शाण्डालिनी की निःस्वार्थ सेवा, निःस्वार्थ परमात्मा में विश्रान्ति की यात्रा ने उसको इतना तो सामर्थ्यवान बना दिया था कि उसके द्वारा पानी के छींटे मार कर यह कहते ही कि 'गालव ! तुम गल जाओ और गालव को सहयोग देने वाले गरुड़ ! तुम भी गल जाओ।' दोनों को महसूस होने लगा कि उनकी शक्ति क्षीण हो रही है। दोनों भीतर-ही-भीतर गलने लगे।

फिर दोनों ने बड़ा प्रायश्चित किया और क्षमायाचना की, तब भारत की उस दिव्य कन्या शाण्डालिनी ने उन्हें माफ किया और पूर्ववत् कर दिया। उसी के तप के प्रभाव से 'गलतेश्वर तीर्थ' बना है।

हे भारत की देवियो ! उठो.... जागो। अपनी आर्य नारियों की महानता को, अपने अतीत के गौरव को याद करो। तुममें अथाह सामर्थ्य है, उसे पहचानो। सत्संग, जप, परमात्म-ध्यान से अपनी छुपी हुई शक्तियों को जाग्रत करो।

जीवनशक्ति का ह्रास करने वाली पाश्चात्य संस्कृति के अंधानुकरण से बचकर तन-मन को दूषित करने वाली फैशनपरस्ती एवं विलासिता से बचकर अपने जीवन को जीवनदाता के पथ पर अग्रसर करो। अगर ऐसा कर सको तो वह दिन दूर नहीं, जब विश्व तुम्हारे दिव्य चरित्र का गान कर अपने को कृतार्थ मानेगा।

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

अनुक्रम

सती सावित्री

'महाभारत' के वन पर्व में सावित्री और यमराज के वार्तालाप का प्रसंग आता हैः

जब यमराज सत्यवान (सावित्री के पति) के प्राणों को अपने पाश में बाँध ले चले, तब सावित्री भी उनके पीछे-पीछे चलने लगी। उसे अपने पीछे आते देखकर यमराज ने उसे वापस लौट जाने के लिए कई बार कहा किंतु सावित्री चलती ही रही एवं अपनी धर्मचर्चा से उसने यमराज को प्रसन्न कर लिया।

सावित्री बोलीः "सत्पुरुषों का संग एक बार भी मिल जाये तो वह अभीष्ट की पूर्ति कराने वाला होता है और यदि उनसे प्रेम हो जाये तो फिर कहना ही क्या? संत-समागम कभी निष्फल नहीं जाता। अतः सदा सत्पुरुषों के साथ ही रहना चाहिए।

देव ! आप सारी प्रजा का नियमन करने वाले हैं, अतः 'यम' कहलाते हैं। मैंने सुना है कि मन, वचन और कर्म द्वारा किसी भी प्राणी के प्रति द्रोह न करके सब पर समान रूप से दया करना और दान देना श्रेष्ठ पुरुषों का सनातन धर्म है। यों तो संसार के सभी लोग सामान्यतः कोमलता का बर्ताव करते हैं किंतु जो श्रेष्ठ पुरुष हैं, वे अपने पास आये हुए शत्रु पर भी दया ही करते हैं।"

यमराजः "कल्याणी ! जैसे प्यासे को पानी मिलने से तृप्ति होती है, उसी प्रकार तेरी धर्मानुकूल बातें सुनकर मुझे प्रसन्नता होती है।"

सावित्रि ने आगे कहाः "विवस्वान (सूर्यदेव) के पुत्र होने के नाते आपको 'वैवस्वत' कहते हैं। आप शत्रु-मित्र आदि के भेद को भुलाकर सबके प्रति समान रूप से न्याय करते हैं और आप 'धर्मराज' कहलाते हैं। अच्छे मनुष्यों को सत्य पर जैसा विश्वास होता है, वैसा अपने पर भी नहीं होता। अतएव वे सत्य में ही अधिक अनुराग रखते हैं विश्वास की सौहार्द का कारण है तथा सौहार्द ही विश्वास का। सत्पुरुषों का भाव सबसे अधिक होता है, इसलिए उन पर सभी विश्वास करते हैं।"

यमराजः "सावित्री ! तूने जो बातें कही हैं वैसी बातें मैंने और किसी के मुँह से नहीं सुनी हैं। अतः मेरी प्रसन्नता और भी बढ़ गयी है। अच्छा, अब तू बहुत दूर चली आयी है। जा, लौट जा।"

फिर भी सावित्री ने अपनी धार्मिक चर्चा बंद नहीं की। वह कहती गयीः "सत्पुरुषों का मन सदा धर्म में ही लगा रहता है। सत्पुरुषों का समागम कभी व्यर्थ नहीं जाता। संतों से कभी किसी को भय नहीं होता। सत्पुरुष सत्य के बल से सूर्य को भी अपने समीप बुला लेते हैं। वे ही अपने प्रभाव से पृथ्वी को धारण करते हैं। भूत भविष्य का आधार भी वे ही हैं। उनके बीच में रहकर श्रेष्ठ पुरुषों को कभी खेद नहीं होता। दूसरों की भलाई करना सनातन सदाचार है, ऐसा मानकर सत्पुरुष प्रत्युपकार की आशा न रखते हुए सदा परोपकार में ही लगा रहते हैं।"

सावित्री की बातें सुनकर यमराज द्रवीभूत हो गये और बोलेः "पतिव्रते ! तेरी ये धर्मानुकूल बातें गंभीर अर्थ से युक्त एवं मेरे मन को लुभाने वाली हैं। तू ज्यों-ज्यों ऐसी बातें सुनाती जाती है, त्यों-त्यों तेरे प्रति मेरा स्नेह बढ़ता जाता है। अतः तू मुझसे कोई अनुपम वरदान माँग ले।"

सावित्रीः "भगवन् ! अब तो आप सत्यवान के जीवन का ही वरदान दीजिए। इससे आपके ही सत्य और धर्म की रक्षा होगी। पति के बिना तो मैं सुख, स्वर्ग, लक्ष्मी तथा जीवन की भी इच्छा नहीं रखती।"

धर्मराज वचनबद्ध हो चुके थे। उन्होंने सत्यवान को मृत्युपाश से मुक्त कर दिया और उसे चार सौ वर्षों की नवीन आयु प्रदान की। सत्यवान के पिता द्युमत्सेन की नेत्रज्योति लौट आयी एवं उन्हें अपना खोया हुआ राज्य भी वापस मिल गया। सावित्री के पिता को भी समय पाकर सौ संताने हुईं एवं सावित्री ने भी अपने पति सत्यवान के साथ धर्मपूर्वक जीवन-यापन करते हुए राज्य-सुख भोगा।

इस प्रकार सती सावित्री ने अपने पातिव्रत्य के प्रताप से पति को तो मृत्यु के मुख से लौटाया ही, साथ ही पति के एवं अपने पिता के कुल, दोनों की अभिवृद्धि में भी वह सहायक बनी।

जिस दिन सती सावित्री ने अपने तप के प्रभाव से यमराज के हाथ में पड़े हुए पति सत्यवान को छुड़ाया था, वही दिन 'वट सावित्री पूर्णिमा' के रूप में आज भी मनाया जाता है। इस दिन सौभाग्यशाली स्त्रियाँ अपने सुहाग की रक्षा के लिए वट वृक्ष की पूजा करती हैं एवं व्रत-उपवास आदि रखती हैं।

कैसी रहीं हैं भारत की आदर्श नारियाँ ! अपने पति को मृत्यु के मुख से लौटाने में यमराज से भी धर्मचर्चा करने का सामर्थ्य रहा है भारत की देवियों में। सावित्री की दिव्य गाथा यही संदेश देती है कि हे भारत की देवियों ! तुममें अथाह सामर्थ्य है, अथाह शक्ति है। संतों-महापुरुषों के सत्संग में जाकर तुम अपनी छुपी हुई शक्ति को जाग्रत करके अवश्य महान बन सकती हो एवं सावित्री-मीरा-मदालसा की याद को पुनः ताजा कर सकती हो।

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

अनुक्रम

माँ सीता की सतीत्व-भावना

भगवान श्रीराम के वियोग तथा रावण और राक्षसियों के द्वारा किये जानेवाले अत्याचारों के कारण माँ सीता अशोक वाटिका में बड़ी दुःखी थीं। न तो वे भोजन करतीं न ही नींद। दिन-रात केवल श्रीराम-नाम के जप में ही तल्लीन रहतीं। उनका विषादग्रस्त मुखमंडल देखकर हनुमान जी ने पर्वताकार शरीर धारण करके उनसे कहाः "माँ ! आपकी कृपा से मेरे पास इतना बल है कि मैं पर्वत, वन, महल और रावणसहित पूरी लंका को उठाकर ले जा सकता हूँ। आप कृपा करके मेरे साथ चलें और भगवान श्रीराम व लक्ष्मण का शोक दूर करके स्वयं भी इस भयानक दुःख से मुक्ति पा लें।"

भगवान श्रीराम में ही एकनिष्ठ रहने वाली जनकनंदिनी माँ सीता ने हनुमानजी से कहाः "हे महाकपि ! मैं तुम्हारी शक्ति और पराक्रम को जानती हूँ, साथ ही तुम्हारे हृदय के शुद्ध भाव एवं तुम्हारी स्वामी-भक्ति को भी जानती हूँ। किंतु मैं तुम्हारे साथ नहीं आ सकती। पतिपरायणता की दृष्टि से मैं एकमात्र भगवान श्रीराम के सिवाय किसी परपुरुष का स्पर्श नहीं कर सकती। जब रावण ने मेरा हरण किया था तब मैं असमर्थ, असहाय और विवश थी। वह मुझे बलपूर्वक उठा लाया था। अब तो करुणानिधान भगवान श्रीराम ही स्वयं आकर, रावण का वध करके मुझे यहाँ से ले जाएँगे।"

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

अनुक्रम

आर्त भक्त द्रौपदी

ईर्ष्या-द्वेष और अति धन-संग्रह से मनुष्य अशांत होता है। ईर्ष्या-द्वेष की जगह पर क्षमा और सत्प्रवृत्ति का हिस्सा बढ़ा दिया जाय तो कितना अच्छा !

दुर्योधन ईर्ष्यालु था, द्वेषी था। उसने तीन महीने तक दुर्वासा ऋषि की भली प्रकार से सेवा की, उनके शिष्यों की भी सेवा की। दुर्योधन की सेवा से दुर्वासा ऋषि प्रसन्न हो गये और बोलेः

"माँग ले वत्स ! जो माँगना चाहे माँग ले।"

जो ईर्ष्या और द्वेष के शिकंजे में आ जाता है, उसका विवेक उसे साथ नहीं देता लेकिन जो ईर्ष्या-द्वेष रहित होता है उसका विवेक सजग रहता है वह शांत होकर विचार या निर्णय करता है। ऐसा व्यक्ति सफल होता है और सफलता के अहं में गरक नहीं होता। कभी असफल भी हो गया तो विफलता के विवाद में नहीं डूबता। दुष्ट दुर्योधन ने ईर्ष्या एवं द्वेष के वशीभूत होकर कहाः

"मेरे भाई पाण्डव वन में दर-दर भटक रहे हैं। उनकी इच्छा है कि आप अपने हजार शिष्यों के साथ उनके अतिथी हो जायें। अगर आप मुझ पर प्रसन्न हैं तो मेरे भाइयों की इच्छा पूरी करें लेकिन आप उसी वक्त उनके पास पहुँचियेगा। जब द्रौपदी भोजन कर चुकी हो।"

दुर्योधन जानता था कि "भगवान सूर्य ने पाण्डवों को अक्षयपात्र दिया है। उसमें से तब तक भोजन-सामग्री मिलती रहती है, जब तक द्रौपदी भोजन न कर ले। द्रौपदी भोजन करके पात्र को धोकर रख दे फिर उस दिन उसमें से भोजन नहीं निकलेगा। अतः दोपहर के बाद जब दुर्वासाजी उनके पास पहुँचेगे, तब भोजन न मिलने से कुपित हो जायेंगे और पाण्डवों को शाप दे देंगे। इससे पाण्डव वंश का सर्वनाश हो जायेगा।"

इस ईर्ष्या और द्वेष से प्रेरित होकर दुर्योधन ने दुर्वासाजी की प्रसन्नता का लाभ उठाना चाहा।

दुर्वासा ऋषि मध्याह्न के समय जा पहुँचे पाण्डवों के पास। युधिष्ठिर आदि पाण्डव एवं द्रौपदी दुर्वासाजी को शिष्यों समेत अतिथि के रूप में आया हुआ देखकर चिन्तित हो गये। फिर भी बोलेः "विराजिये महर्षि ! आपके भोजन की व्यवस्था करते हैं।"

अंतर्यामी परमात्मा सबका सहायक है, सच्चे का मददगार है। दुर्वासाजी बोलेः "ठहरो ठहरो.... भोजन बाद में करेंगे। अभी तो यात्रा की थकान मिटाने के लिए स्नान करने जा रहा हूँ।"

इधर द्रौपदी चिन्तित हो उठी कि अब अक्षयपात्र से कुछ न मिल सकेगा और इन साधुओं को भूखा कैसे भेजें? उनमें भी दुर्वासा ऋषि को ! वह पुकार उठीः "हे केशव ! हे माधव ! हे भक्तवत्सल ! अब मैं तुम्हारी शरण में हूँ...." शांत चित्त एवं पवित्र हृदय से द्रौपदी ने भगवान श्रीकृष्ण का चिन्तन किया। भगवान श्रीकृष्ण आये और बोलेः "द्रौपदी ! कुछ खाने को तो दो !"

द्रौपदीः "केशव ! मैंने तो पात्र को धोकर रख दिया है।"

श्री कृष्णः "नहीं, नहीं... लाओ तो सही ! उसमें जरूर कुछ होगा।"

द्रौपदी ने पात्र लाकर रख दिया तो दैवयोग से उसमें तांदुल के साग का एक पत्ता बच गया था। विश्वात्मा श्रीकृष्ण ने संकल्प करके उस तांदुल के साग का पत्ता खाया और तृप्ति का अनुभव किया तो उन महात्माओं को भी तृप्ति का अनुभव हुआ वे कहने लगे किः "अब तो हम तृप्त हो चुके हैं, वहाँ जाकर क्या खायेंगे? युधिष्ठिर को क्या मुँह दिखायेंगे?"

शातं चित्त से की हुई प्रार्थना अवश्य फलती है। ईर्ष्यालु एवं द्वेषी चित्त से तो किया-कराया भी चौपट हो जाता है जबकि नम्र और शांत चित्त से तो चौपट हुई बाजी भी जीत में बदल जाती है और हृदय धन्यता से भर जाता है।

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

अनुक्रम

दैवी शक्तियों से सम्पन्न गुणमंजरी देवी

(दिनांक 12 अक्तूबर, से 21 अक्तूबर 2002 तक मांगल्य धाम, रतलाम (म.प्र.) में शरद् पूर्णिमा पर आयोजित 'शक्तिपात साधना शिविर' में पूज्य श्री ने शिविरार्थियों को अपनी सुषुप्त दिव्य शक्तियों को जागृत करने का आह्वान किया।

विक्रम संवत् 1781 में प्रयागराज इलाहाबाद में घटित एक घटना का जिक्र करते हुए पूज्यश्री ने लोकपावनी वाणी में कहाः)

प्रयागराज इलाहाबाद में त्रयोदशी के कुंभ-स्नान का पर्व-दिवस था। कुंभ में कई अखाड़ेवाले, जति-जोगि, साधु-संत आये थे। उसमें कामकौतुकी नामक एक ऐसी जाति भी आयी थी जो भगवान के लिए ही राग-रागिनियों का अभ्यास किया करती थी तथा भगवदगीत के सिवाय और कोई गीत नहीं गाती थी। उसने भी अपना गायन-कार्यक्रम कुंभ मेले में रखा था।

श्रृंगेरी मठाधीश श्री सोमनाथाचार्य भी इस कामकौतुकी जातिवालों के संयम और राग-रागिनियों में उनकी कुशलता के बारे में जानते थे, इसलिए वे भी वहाँ पधारे थे। उस कार्यक्रम में सोमनाथाचार्य जी की उपस्थिति के कारण लोगों को विशेष आनंद हुआ और जब गुणमंजरी देवी भी आ पहुँची तो उस आनंद में चार चाँद लग गये।

गुणमंजरी देवी ने चान्द्रायण और कृच्छ्र व्रत किये थे। शरीर के दोषों को हरने वाले जप-तप और संयम को अच्छी तरह से साधा था। लोगों ने मन-ही-मन उसका अभिवादन किया।

गुणमंजरी देवी भी केवल गीत ही नहीं गाती थीं, वरन् उसने अपने जीवन में दैवी गुणों का इतना विकसित किया था कि जब चाहे अपनी दैविक सखियों को बुला सकती थी, जब चाहे बादल मँडरवा सकती थी, बिजली चमका सकती थी। उस समय उसकी ख्याति दूर-दूर तक पहुँच चुकी थी।

कार्यक्रम आरम्भ हुआ। कामकौतुकी जाति के आचार्यों ने शब्दों की पुष्पांजली से ईश्वरीय आराधना का माहौल बनाया। अंत में गुणमंजरी देवी से प्रार्थना की गयी।

गुणमंजरी देवी ने वीणा पर अपनी उँगलियाँ रखीं। माघ का महीना था। ठण्डी-ठण्डी हवाएँ चलने लगीं। थोड़ी ही देर में मेघ गरजने लगे, बिजली चमकने लगी और बारिश का माहौल बन गया। आने वाली बारिश से बचने के लोगों का चित्त कुछ विचलित होने लगा। इतने में सोमनाथाचार्यजी ने कहाः "बैठे रहना। किसी को

चिन्ता करने की जरूरत नहीं है। ये बादल तुम्हें भिगोयेंगे नहीं। ये तो गुण मंजरी देवी की तपस्या और संकल्प का प्रभाव है।"

संत की बात का उल्लंघन करना मुक्तिफल को त्यागना और नरक के द्वार खोलना है। लोग बैठे रहे।

32 राग और 64 रागिनियाँ हैं। राग और रागिनियाँ के पीछे उनके अर्थ और आकृतियाँ भी होती हैं। शब्द के द्वारा सृष्टि में उथल-पुथल मच सकती है। वे निर्जीव नहीं हैं, उनमें सजीवता है। जैसे 'एयर कंडीशनर' चलाते हैं तो वह आपको हवा से पानी अलग करके दिखा देता है, ऐसे ही इन पाँच भूतों में स्थित दैवी गुणों को जिन्होंने साध लिया है, वे शब्द की ध्वनि के अनुसार बुझे दीप जला सकते हैं, वृष्टि कर सकते हैं - ऐसे कई प्रसंग आपने-हमने-देखे-सुने होगें। गुणमंजरी देवी इस प्रकार की साधना से सम्पन्न देवी थी।

माहौल श्रद्धा-भक्ति और संयम की पराकाष्ठा पर था। गुणमंजरी देवी ने वीणा बजाते हुए आकाश की ओर निहारा। घनघोर बादलों में से बिजली की तरह एक देवांगना प्रकट हुई। वातावरण संगीतमय-नृत्यमय होता जा रहा था। लोग दंग रह गये ! आश्चर्य को भी आश्चर्य के समुद्र में गोते खाने पड़े, ऐसा माहौल बन गया !

लोग भीतर ही भीतर अपने सौभाग्य की सराहना किये जा रहे थे। मानों, उनकी आँखें उस दृश्य को पी जाना चाहती थीं। उनके कान उस संगीत को पचा जाना चाहते थे। उनका जीवन उस दृश्य के साथ एक रूप होता जा रहा था.... 'गुणमंजरी, धन्य हो तुम !' कभी वे गुणमंजरी को को धन्यवाद देते हुए उसके गीत में खो जाते और कभी उस देवांगना के शुद्ध पवित्र नृत्य को देखकर नतमस्तक हो उठते !

कार्यक्रम सम्पन्न हुआ। देखते ही देखते गुणमंजरी देवी ने देवांगना को विदाई दी। सबके हाथ जुड़े हुए थे, आँखें आसमान की ओर निहार रही थीं और दिल अहोभाव से भरा था। मानों, प्रभु-प्रेम में, प्रभु की अदभुत लीला में खोया-सा था.....

श्रृंगेरी मठाधीश श्री सोमनाथाचार्यजी ने हजारों लोगों की शांत भीड़ से कहाः "सज्जनो ! इसमें आश्चर्य की कोई आवश्यकता नहीं है। हमारे पूर्वज देवलोक से भारतभूमि पर आते और संयम, साधना तथा भगव्तप्रीति के प्रभाव से अपने वांछित दिव्य लोकों तक की यात्रा करने में सफल होते थे। कोई-कोई ब्रह्मस्वरूप परमात्मा का श्रवण, मनन, निदिध्यासन करके यहीं ब्रह्ममय अनन्त ब्रह्माण्डव्यापी अपने आत्म-ऐश्वर्य को पा लेते थे।

समय के फेर से लोग सब भूलते गये। अनुचित खान-पान, स्पर्श-दोष, संग-दोष, विचार-दोष आदि से लोगों की मति और सात्त्विकता मारी गयी। लोगों में छल कपट और तमस बढ़ गया, जिससे वे दिव्य लोकों की बात ही भूल गये, अपनी असलियत को ही भूल गये..... गुणमंजरी देवी ने संग दोष से बचकर संयम से साधन-भजन किया तो उसका देवत्व विकसित हुआ और उसने देवांगना को बुलाकर तुम्हें अपनी असलियत का परिचय दिया !

तुम भी इस दृश्य को देखने के काबिल तब हुए, जब तुमने कुंभ के इस पर्व पर, प्रयागराज के पवित्र तीर्थ में संयम और श्रद्धा-भक्ति से स्नान किया। इसके प्रभाव से तुम्हारे कुछ कल्मष कटे और पुण्य बढ़े। पुण्यात्मा लोगों के एकत्रित होने से गुणमंजरी देवी के संकल्प में सहायता मिली और उसने तुम्हें यह दृश्य दिखाया। अतः इसमें आश्चर्य न करो।"

आपमें भी ये शक्तियाँ छुपी हैं। तुम भी चाहो तो अनुचित खान-पान, संग-दोष आदि से बचकर, सदगुरु के निर्देशानुसार साधना-पथ पर अग्रसर हो इन शक्तियों को विकसित करने में सफल हो सकते हो। केवल इतना ही नहीं, वरन् परब्रह्म-परमात्मा को पाकर सदा-सदा के लिए मुक्त भी हो सकते हो, अपने मुक्तस्वरूप का जीते जी अनुभव कर सकते हो....

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

अनुक्रम

विवेक की धनीः कर्मावती

यह कथा सत्यस्वरूप ईश्वर को पाने की तत्परता रखनेवाली, भोग-विलास को तिलांजलि देने वाली, विकारों का दमन और निर्विकार नारायण स्वरुप का दर्शन करने वाली उस बच्ची की है जिसने न केवल अपने को तारा, अपितु अपने पिता राजपुरोहित परशुरामजी का कुल भी तार दिया।

जयपुर-सीकर के बीच महेन्द्रगढ़ के सरदार शेखावत के राजपुरोहित परशुरामजी की उस बच्ची का नाम था कर्मा, कर्मावती। बचपन में वह ऐसे कर्म करती थी कि उसके कर्म शोभा देते थे। कई लोग कर्म करते हैं तो कर्म उनको थका देते हैं। कर्म में उनको फल की इच्छा होती है। कर्म में कर्तापन होता है।

कर्मावती के कर्म में कर्तापन नहीं था, ईश्वर के प्रति समर्पण भाव थाः 'जो कुछ कराता है प्रभु ! तू ही कराता है। अच्छे काम होते हैं तो नाथ ! तेरी कृपा से ही हम कर पाते हैं।' कर्मावती कर्म करती थी, लेकिन कर्ताभाव को विलय होने का मौका मिले उस ढंग से करती थी।

कर्मावती तेरह साल की हुई। गाँव में साधु-संत पधारे। उन सत्पुरुषों से गीता का ज्ञान सुना, भगवदगीता का माहात्म्य सुना। अच्छे-बुरे कर्मों के बन्धन से जीव मनुष्य-लोक में जन्मता है, थोड़ा-सा सुखाभास पाता है परंतु काफी मात्रा में दुःख भोगता है। जिस शरीर से सुख-दुःख भोगता है, वह शरीर तो जीवन के अंत में जल जाता है, लेकिन भीतर सुख पाने का, सुख भोगने का भाव बना रहता है। यह कर्ता-भोक्तापन का भाव तब तक बना रहता है, जब तक मन की सीमा से परे परमात्मा-स्वरूप का बोध नहीं होता।

कर्मावती इस प्रकार का सत्संग खूब ध्यान देकर, आँखों की पलकें कम गिरें इस प्रकार सुनती थी। वह इतना एकाग्र होकर सत्संग सुनती कि उसका सत्संग सुनना बंदगी हो जाता था।

एकटक निहारते हुए सत्संग सुनने से मन एकाग्र होता है। सत्संग सुनने का महापुण्य तो होता ही है, साथ ही साथ मनन करने का लाभ भी मिल जाता है और निदिध्यासन भी होता रहता है।

दूसरे लोग सत्संग सुनकर थोड़ी देर के बाद कपड़े झाड़कर चल देते और सत्संग की बात भूल जाते। लेकिन कर्मावती सत्संग को भूलती नहीं थी, सत्संग सुनने के बाद उसका मनन करती थी। मनन करने से उसकी योग्यता बढ़ गयी। जब घर में अनुकूलता या प्रतिकूलता आती तो वह समझती कि जो आता है वह

जाता है। उसको देखनेवाला मेरा राम, मेरा कृष्ण, मेरा आत्मा, मेरे गुरुदेव, मेरा परमात्मा केवल एक है। सुख आयेगा – जायेगा, पर मैं चैतन्य आत्मा एकरस हूँ, ऐसा उसने सत्संग में सुन रखा था।

सत्संग को खूब एकाग्रता से सुनने और बाद में उसे स्मरण-मनन करने से कर्मावती ने छोटी उम्र में खूब ऊँचाई पा ली। वह बातचीत में और व्यवहार में भी सत्संग की बातें ला देती थी। फलतः व्यवहार के द्वन्द्व उसके चित्त को मलिन नहीं करते थे। उसके चित्त की निर्मलता व सात्त्विकता बढ़ती गयी।

मैं तो महेन्द्रगढ़ के उस सरदार खंडेरकर शेखावत को भी धन्यवाद दूँगा क्योंकि उसके राजपुरोहित हुए थे परशुराम और परशुराम के घर आयी थी कर्मावती जैसी पवित्र बच्ची। जिनके घर में भक्त पैदा हो वे माता-पिता तो भाग्यशाली हैं ही, पवित्र हैं, वे जहाँ नौकरी करते हैं वह जगह, वह आफिस, वह कुर्सी भी भाग्यशाली है। जिसके यहाँ वे नौकरी करते हैं वह भी भाग्यशाली हैं कि भक्त के माता-पिता उसके यहाँ आया-जाया करते हैं।

राजपुरोहित परशुराम भी भगवान के भक्त थे। संयमी जीवन था उनका। वे सदाचारी थे, दीन-दुःखियों की सेवा किया करते थे, गुरु-दर्शन में रूचि और गुरु-वचन में विश्वास रखने वाले थे। ऐसे पवित्रात्मा के यहाँ जो संतान पैदा हो, उसका भी ओजस्वी-तेजस्वी होना स्वाभाविक है।

कर्मावती पिता से भी बहुत आगे बढ़ गयी। कहावत है कि 'बाप से बेटा सवाया होना चाहिए' लेकिन यह तो बेटी सवायी हो गई भक्ति में !

परशुराम सरदार के कामकाज में व्यस्त रहते, अतः कभी सत्संग में जा पाते कभी नहीं, पर कर्मावती हर रोज नियमित रूप से अपनी माँ को लेकर सत्संग सुनने पहुँच जाती है। परशुराम सत्संग की बात भूल भी जाते परंतु कर्मावती याद रखती।

कर्मावती ने घर में पूजा के लिए एक कोठरी बना ली थी। वहाँ संसार की कोई बात नहीं, केवल माला और जप ध्यान। उसने उस कोठरी को सात्त्विक सुशोभनों से सजाया था। बिना हाथ-पैर धोये, नींद से उठकर बिना स्नान किये उसमें प्रवेश नहीं करती थी। धूप-दीप-अगरबत्ती से और कभी-कभी ताजे खिले हुए फूलों से कोठरी को पावन बनाया करती, महकाया करती। उसके भजन की कोठरी मानों, भगवान का मंदिर ही बन गयी थी। वह ध्यान-भजन नहीं करनेवाले निगुरे कुटुम्बियों को नम्रता से समझा-बुझाकर उस कोठरी में नहीं आने देती थी। उसकी उस साधना-कुटीर में भगवान की ज्यादा मूर्तियाँ नहीं थीं। वह जानती थी कि अगर ध्यान-भजन में रूचि न हो तो वे मूर्तियाँ बेचारी क्या करेंगी? ध्यान-भजन में सच्ची लगन हो तो एक ही मूर्ति काफी है।

साधक अगर एक ही भगवान की मूर्ति या गुरुदेव के चित्र को एकटक निहारते-निहारते आंतर यात्रा करे तो 'एक में ही सब है और सब में एक ही है' यह ज्ञान होने में सुविधा रहेगी। जिसके ध्यान-कक्ष में, अभ्यास-खण्ड में या घर में बहुत से देवी-देवताओं के चित्र हों, मूर्तियाँ हों तो समझ लेना, उसके चित्त में और जीवन में काफी अनिश्चितता होगी ही। क्योंकि उसका चित्त अनेक में बँट जाता है, एक पर पूरा भरोसा नहीं रहता।

कर्मावती ने साधन-भजन करने का निश्चित नियम बना लिया था। नियम पालने में वह पक्की थी। जब तक नियम पूरा न हो तब तक भोजन नहीं करती। जिसके जीवन में ऐसी दृढ़ता होती है, वह हजारों विघ्न-बाधाओं और मुसीबतों को पैरों तले कुचलकर आगे निकल जाता है।

कर्मावती 13 साल की हुई। उस साल उसके गाँव में चातुर्मास करने के लिए संत पधारे। कर्मावती एक दिन भी कथा सुनना चूकी नहीं। कथा-श्रवण के साररूप उसके दिल-दिमाग में निश्चय दृढ़ हुआ कि जीवनदाता को पाने के लिए ही यह जीवन मिला है, कोई गड़बड़ करने के लिए नहीं। परमात्मा को नहीं पाया तो जीवन व्यर्थ है।

न पति अपना है न पत्नी अपनी है, न बाप अपना है न बेटे अपने हैं, न घर अपना है न दुकान अपनी है। अरे, यह शरीर तक अपना नहीं है तो और की क्या बात करें? शरीर को भी एक दिन छोड़ना पड़ेगा, श्मशान में उसे जलाया जायेगा।

कर्मावती के हृदय में जिज्ञासा जगी कि शरीर जल जाने से पहले मेरे हृदय का अज्ञान कैसे जले? मैं अज्ञानी रहकर बूढ़ी हो जाऊँ, आखिर में लकड़ी टेकती हुई, रुग्ण अवस्था में अपमान सहती हुई, कराहती हुई अन्य बुढ़ियाओं की नाईं मरुँ यह उचित नहीं। यह कभी-कभी वृद्धों को, बीमार व्यक्तियों को देखती और मन में वैराग्य लाती कि मैं भी इसी प्रकार बूढ़ी हो जाऊँगी, कमर झुक जायेगी, मुँह पोपला हो जायेगा। आँखों से पानी टपकेगा, दिखाई नहीं देगा, सुनाई नहीं देगा, शरीर शिथिल हो जायेगा। यदि कोई रोग हो जायेगा तो और मुसीबत। किसी की मृत्यु होती तो कर्मावती उसे देखती, जाती हुई अर्थी को निहारती और अपने मन को समझातीः "बस ! यही है शरीर का आखिरी अंजाम? जवानी में सँभाला नहीं तो बुढ़ापे में दुःख भोग-भोगकर आखिर मरना ही है। राम.....! राम.....!! राम.....!!! मैं ऐसी नहीं बनूँगी। मैं तो बनूँगी भगवान की जोगिन मीराबाई। मैं तो मेरे प्यारे परमात्मा को रिझाऊँगी।'

कर्मावती कभी वैराग्य की अग्नि में अपने को शुद्ध करती है, कभी परमात्मा के स्नेह में भाव विभोर हो जाती है, कभी प्यारे के वियोग में आँसू बहाती है तो कभी सुनमुन होकर बैठी रहती है। मृत्यु तो किसी के घर होती है और कर्मावती के हृदय के पाप जलने लगते हैं। उसके चित्त में विलासिता की मौत हो जाती है, संसारी तुच्छ आकर्षणों का दम घुट जाता है और हृदय में भगवदभक्ति का दिया जगमगा उठता है।

किसी की मृत्यु होने पर भी कर्मावती के हृदय में भक्ति का दिया जगमगाने लगता और किसी की शादी हो तब भी भक्ति का दिया ही जगमगाता। वह ऐसी भावना करती कि

मैं ऐसे वर को क्यों वरूँ, जो उपजे और मर जाय।
मैं तो वरूँ मेरे गिरधर गोपाल को, मेरो चूड़लो अमर हो जाय।

मीरा ने इसी भाव को प्रकटाकर, दुहराकर अपने जीवन को धन्य कर लिया था।

कर्मावती ने भगवदभक्ति की महिमा सुन रखी थी कि एक ब्राह्मण युवक था। उसने अपना स्वभावजन्य कर्म नहीं किया। केवल विलासी और दुराचारी जीवन जिया। जो आया सो खाया, जैसा चाहा वैसा भोगा, कुकर्म किये। वह मरकर दूसरे जन्म में बैल बना और किसी भिखारी के हाथ लगा। वह भिखारी बैल पर सवारी करता और बस्ती में घूम-फिरकर, भीख माँगकर अपना गुजारा चलाता।

दुःख सहते-सहते बैल बूढ़ा हो गया, उसके शरीर की शक्ति क्षीण हो गयी। वह अब बोझ ढोने के काबिल नहीं रहा। भिखारी ने बैल को छोड़ दिया। रोज-रोज व्यर्थ में चारा कहाँ से खिलाये? भूखा प्यासा बैल इधर-उधर

भटकने लगा। कभी कहीं कुछ रूखा-सूखा मिल जाता तो खा लेता। कभी लोगों के डण्डे खाकर ही रह जाना पड़ता।

बारिश के दिन आये। बैल कहीं कीचड़ के गड्डे में उतर गया और फँस गया। उसकी रगों में ताकत तो थी नहीं। फिर वहीं छटपटाने लगा तो और गहराई में उतरने लगा। पीठ की चमड़ी फट गयी, लाल धब्बे दिखाई देने लगे। अब ऊपर से कौएँ चोंच मारने लगे, मक्खियाँ भिनभिनाने लगीं। निस्तेज, थका मांदा, हारा हुआ वह बूढ़ा बैल अगले जन्म में खूब मजे कर चुका था, अब उनकी सजा भोग रहा है। अब तो प्राण निकलें तभी छुटकारा हो। वहाँ से गुजरते हुए लोग दया खाते कि बेचारा बैल ! कितना दुःखी है ! हे भगवान ! इसकी सदगति हो जाय ! कितना दुःखी है ! हे भगवान ! इसकी सदगति हो जाये ! वे लोग अपने छोटे-मोटे पुण्य प्रदान करते फिर भी बैल की सदगति नहीं होती थी।

कई लोगों ने बैल को गड्डे से बाहर निकालने की कोशिश की, पूँछ मरोड़ी, सींगों में रस्सी बाँधकर खींचा-तानी की लेकिन कोई लाभ नहीं। वे बेचारे बैल को और परेशान करके थककर चले गये।

एक दिन कुछ बड़े-बूढ़े लोग आये और विचार करने लगे कि बैल के प्राण नहीं निकल रहे हैं, क्या किया जाये? लोगों की भीड़ इकट्ठी हो गयी। उस टोले में एक वेश्या भी थी। वेश्या ने कुछ अच्छा संकल्प किया।

वह हर रोज तोते के मुँह से टूटी-फूटी गीता सुनती। समझती तो नहीं फिर भी भगवदगीता के श्लोक तो सुनती थी। भगवदगीता आत्मज्ञान देती है, आत्मबल जगाती है। गीता वेदों का अमृत है। उपनिषदरूपी गायों को दोहकर गोपालनन्दन श्रीकृष्णरूपी ग्वाले ने गीतारूपी दुग्धामृत अर्जुन को पिलाया है। यह पावन गीता हर रोज सुबह पिंजरे में बैठा हुआ तोतो बोलता था, वह सुनती थी। वेश्या ने इस गीता-श्रवण का पुण्य बैल की सदगति के लिए अर्पण किया।

जैसे ही वेश्या ने संकल्प किया कि बैल के प्राण-पखेरु उड़ गये। उसी पुण्य के प्रभाव से वह बैल सोमशर्मा नामक ब्राह्मण के घर बालक होकर पैदा हुआ। बालक जब 6 साल का हुआ तो उसके यज्ञोपवीत आदि संस्कार किये गये। माता-पिता ने कुल-धर्म के पवित्र संस्कार किये गये। माता-पिता ने कुल-धर्म के पवित्र संस्कार दिये। उसकी रूचि ध्यान-भजन में लगी। वह आसन, प्राणायाम, ध्यानाभ्यास आदि करने लगा। उसने योग में तीव्रता से प्रगति कर ली और 18 साल की उम्र में ध्यान के द्वारा अपना पूर्वजन्म जान लिया। उसको आश्चर्य हुआ कि ऐसा कौन-सा पुण्य उस बाई ने अर्पण किया जिससे मुझे बैल की नारकीय अवस्था से मुक्ति मिली व जप-तप करने वाले पवित्र ब्राह्मण के घर जन्म मिला?

ब्राह्मण युवक पहुँचा वेश्या के घर। वेश्या अब तक बूढ़ी हो चुकी थी। वह अपने कृत्यों पर पछतावा करने लगी थी। अपने द्वार पर ब्राह्मण कुमार को आया देखकर उसने कहाः

"मैंने कई जवानों की जिन्दगी बरबाद की है, मैं पाप-चेष्टाओं में गरक रहते-रहते बूढ़ी हो गयी हूँ। तू ब्राह्मण का पुत्र ! मेरे द्वार पर आते तुझे शर्म नहीं आती?"

"मैं ब्राह्मण का पुत्र जरूर हूँ पर विकारी और पाप की निगाह से नहीं आया हूँ। माताजी ! मैं तुमको प्रणाम करके पूछने आया हूँ कि तुमने कौन सा पुण्य किया है?"

"भाई ! मैं तो वेश्या ठहरी। मैंने कोई पुण्य नहीं किया है?"

"उन्नीस साल पहले किसी बैल को कुछ पुण्य अर्पण किया था?"

"हाँ..... स्मरण में आ रहा है। कोई बूढ़ा बैल परेशान हो रहा था, प्राण नहीं छूट रहे थे बेचारे के। मुझे बहुत दया आयी। मेरे और तो कोई पुण्य थे नहीं। किसी ब्राह्मण के घर में चोर चोरी करके आये थे। उस सामान में तोते का एक पिंजरा भी था जो मेरे यहाँ छोड़ गये। उस ब्राह्मण ने तोते को श्रीमदभगवदगीता के कुछ श्लोक रटाये थे। वह मैं सुनती थी। उसी का पुण्य उस बैल को अर्पण किया था।

ब्राह्मण कुमार को ऐसा लगा कि यदि भगवदगीता का अर्थ समझे बिना केवल उसका श्रवण ही इतना लाभ कर सकता है तो उसका मनन और निदिध्यासन करके गीता-ज्ञान पचाया जाये तो कितना लाभ हो सकता है ! वह पूर्ण शक्ति से चल पड़ा गीता-ज्ञान को जीवन में उतारने के लिए।

कर्मावती को जब गीता-माहात्म्य की यह कथा सुनने को मिली तो उसने भी गीता का अध्ययन शुरु कर दिया। भगवदगीता में तो प्राणबल है, हिम्मत है, शक्ति है। कर्मावती के हृदय में भगवान श्रीकृष्ण के लिए प्यार पैदा हो गया। उसने पक्की गाँठ बाँध ली कि कुछ भी हो जाये मैं उस बाँके बिहारी के आत्म-ध्यान को ही अपना जीवन बना लूँगी, गुरुदेव के ज्ञान को पूरा पचा लूँगी। मैं संसार की भट्ठी में पच-पचकर मरूँगी नहीं, मैं तो परमात्म-रस के घूँट पीते-पीते अमर हो जाऊँगी।

कर्मावती ने ऐसा नहीं किया कि गाँठ बाँध ली और फिर रख दी किनारे। नहीं.... एक बार दृढ़ निश्चय कर लिया तो हर रोज सुबह उस निश्चय को दुहराती, अपने लक्ष्य का बार-बार स्मरण करती और अपने आपसे कहा करती कि मुझे ऐसा बनना है। दिन-प्रतिदिन उसका निश्चय और मजबूत होता गया।

कोई एक बार निर्णय कर ले और फिर अपने निर्णय को भूल जाये तो उस निर्णय की कोई कीमत नहीं रहती। निर्णय करके हर रोज उसे याद करना चाहिए, उसे दुहराना चाहिए कि हमें ऐसा बनना है। कुछ भी हो जाये, निश्चय से हटना नहीं है।

हमें रोक सके ये जमाने में दम नहीं।
हमसे जमाना है जमाने से हम नहीं।।

पाँच वर्ष के ध्रुव ने निर्णय कर लिया तो विश्वनियंता विश्वेश्वर को लाकर खड़ा कर दिया। प्रह्लाद ने निर्णय कर लिया तो स्तंभ में से भगवान नृसिंह को प्रकट होना पड़ा। मीरा ने निर्णय कर लिया तो मीरा भक्ति में सफल हो गयी।

प्रातः स्मरणीय परम पूज्य स्वामी श्री लीलाशाहजी बापू ने निर्णय कर लिया तो ब्रह्मज्ञान में पारंगत हो गये। हम अगर निर्णय करें तो हम क्यों सफल नहीं होंगे? जो साधक अपने साधन-भजन करने के पवित्र स्थान में, ब्राह्ममूहूर्त के पावन काल में महान बनने के निर्णय को बार-बार दुहराते हैं उनको महान होने से दुनिया की कोई ताकत रोक नहीं सकती।

कर्मावती 18 साल की हुई। भीतर से जो पावन संकल्प किया था उस पर वह भीतर-ही-भीतर अडिग होती चली गयी। वह अपना निर्णय किसी को बताती नहीं थी।, प्रचार नहीं करती थी, हवाई गुब्बारे नहीं उड़ाया करती थी अपितु सत्संकल्प की नींव में साधना का जल सिंचन किया करती थी।

कई भोली-भाली मूर्ख बच्चियाँ ऐसी होती हैं, जिन्होंने दो चार सप्ताह ध्यान-भजन किया, दो चार महीने साधना की और चिल्लाने लग गयीं कि 'मैं अब शादी नहीं करूँगी, मैं अब साध्वी बन जाऊँगी, संन्यासिनी बन जाऊँगी, साधना करूँगी' साधन-भजन की शक्ति बढ़ने के पहले ही चिल्लाने लग गयीं।

वे ही बच्चियाँ दो-चार साल बाद मेरे पास आयीं, देखा तो उन्होंने शादी कर ली थी और अपना नन्हा-मुन्ना बेटा-बेटी ले आकर मुझसे आशीर्वाद माँग रही थीं कि मेरे बच्चे को आशीर्वाद दें कि इसका कल्याण हो।

मैंने कहाः अरे ! तू तो बोलती थी, शादी नहीं करूँगी, संन्यास लूँगी, साधना करूँगी और फिर यह संसार का झमेला?"

साधना की केवल बातें मत करो, काम करो, बाहर घोषणा मत करो, भीतर-ही-भीतर परिपक्व बनते जाओ। जैसे स्वाति नक्षत्र में आकाश से गिरती जल की बूँद को पका-पकाकर मोती बना देती है, ऐसे ही तुम भी अपनी भक्ति की कुंजी गुप्त रखकर भीतर-ही-भीतर उसकी शक्ति को बढ़ने दो। साधना की बात किसी को बताओ नहीं। जो अपने परम हितैषी हों, भगवान के सच्चे भक्त हों, श्रेष्ठ पुरुष हों, सदगुरु हों केवल उनसे ही अपनी अंतरंग साधना की बात करो। अंतरंग साधना के विषय में पूछो। अपने आध्यात्मिक अनुभव जाहिर करने से साधना का ह्रास होता है और गोप्य रखने से साधना में दिव्यता आती है।

मैं जब घर में रहता था, तब युक्ति से साधन-भजन करता था और भाई को बोलता थाः थोड़े दिन भजन करने दो, फिर दुकान पर बैठूँगा। अभी अनुष्ठान चल रहा है। एक पूरा होता तो कहता, अभी एक बाकी है। फिर थोड़े दिन दुकान पर जाता। फिर उसको बोलताः 'मुझे कथा में जाना है।' तो भाई चिढ़कर कहताः "रोज-रोज ऐसा कहता है, सुधरता नहीं?" मैं कहताः "सुधर जाऊँगा।"

ऐसा करते-करते जब अपनी वृत्ति पक्की हो गयी, तब मैंने कह दियाः 'मैं दुकान पर नहीं बैठूँगा, जो करना हो सो कर लो। यदि पहले से ही ऐसे बगावत के शब्द बोलता तो वह कान पकड़कर दुकान पर बैठा देता।

मेरी साधना को रोककर मुझे अपने जैसा संसारी बनाने के लिए रिश्तेदारों ने कई उपाय आजमाये थे। मुझे फुसला कर सिनेमा दिखाने ले जाते, जिससे संसार का रंग लग जाये, ध्यान-भजन की रूचि नष्ट हो जाये। फिर जल्दी-जल्दी शादी करा दी। हम दोनों को कमरे में बन्द कर देते ताकि भगवान से प्यार न करूँ और संसारी हो जाऊँ। अहाहा....! संसारी लोग साधना से कैसे-कैसे गिरते-गिराते हैं। मैं भगवान से आर्तभाव से प्रार्थना किया करता कि 'हे प्रभु ! मुझे बचाओ।' आँखों से झर-झर आँसू टपकते। उस दयालु देव की कृपा का वर्णन नहीं कर सकता।

मैं पहले भजन नहीं करता तो घरवाले बोलतेः 'भजन करो.... भजन करो.... ' जब मैं भजन करने लगा तो लोग बोलने लगेः 'रुको.. रुको... इतना सारा भजन नहीं करो।' जो माँ पहले बोलती थी कि 'ध्यान करो।' फिर वही बोलने लगी कि 'इतना ध्यान नहीं करो। तेरा भाई नाराज होता है। मैं तेरी माँ हूँ। मेरी आज्ञा मानो।'

अभी जहाँ भव्य आश्रम है, वहाँ पहले ऐसा कुछ नहीं था। कँटीले झाड़-झंखाड़ तथा भयावह वातावरण था वहाँ। उस समय जब हम मोक्ष कुटीर बना रहे थे, तब भाई माँ को बहकाकर ले आया और बोलाः "सात सात

साल चला गया था। अब गुरुजी ने भेजा है तो घर में रहो, दुकान पर बैठो। यहाँ जंगल में कुटिया बनवा रहे हो! इतनी दूर तुम्हारे लिए रोज-रोज टिफिन कौन लायेगा?"

माँ भी कहने लगी "मैं तुम्हारी माँ हूँ न? तुम मातृ आज्ञा शिरोधार्य करो, यह ईंटें वापस कर दो। घर में आकर रहो। भाई के साथ दुकान पर बैठा करो।"

यह माँ की आज्ञा नहीं थी, ममता की आज्ञा थी और भाई की चाबी भराई हुई आज्ञा थी। माँ ऐसी आज्ञा नहीं देती।

भाई मुझे घर ले जाने के लिए जोर मार रहा था। भाभी भी कहने लगीः "यहाँ उजाड़ कोतरों में अकेले पड़े रहोगे? क्या हर रोज मणिनगर से आपके भाई टिफिन लेकर यहाँ आयेंगे?"

मैंने कहाः "ना.... ना... आपका टिफिन हमको नहीं चाहिए। उसे अपने पास ही रखो। यहाँ आकर तो हजारों लोग भोजन करेंगे। हमारा टिफिन वहाँ से थोड़े ही मँगवाना है?"

उन लोगों को यही चिन्ता होती थी कि यह अकेला यहाँ रहेगा तो मणिनगर से इसके लिए खाना कौन लायेगा? उनको पता नहीं कि जिसके सात साल साधना में गये हैं वह अकेला नहीं है, विश्वेश्वर उसके साथ है। बेचारे संसारियों की बुद्धि अपने ढंग की होती है।

माँ मुझे दोपहर को समझाने आयी थी। उसके दिल में ममता थी। यहाँ पर कोई पेड़ नहीं था, बैठने की जगह नहीं थी। छोटे-बड़े गड्डे थे। जहाँ मोक्ष कुटीर बनी है, वहाँ खिजड़े का पेड़ थाष वहाँ लोग दारू छिपाते थे। कैसी-कैसी विकट परिस्थितियाँ थीं, लेकिन हमने निर्णय कर लिया था कि कुछ भी हो, हम तो अपनी राम-नाम की शराब पियेंगे, पिलायेंगे। ऐसे ही कर्मावती ने भी निर्णय कर लिया था लेकिन उसे भीतर छिपाये थी। जगत भक्ति नहीं और करने दे नहीं। दुनिया दोरंगी है।

दुनिया कहे मैं दुरंगी पल में पलटी जाऊँ।
सुख में जो सोते रहें वा को दुःखी बनाऊँ।।

आत्मज्ञान या आत्मसाक्षात्कार तो बहुत ऊँची चीज होती है। तत्त्वज्ञानी के आगे भगवान कभी अप्रकट रहता ही नहीं। आत्मसाक्षात्कारी तो स्वयं भगवत्स्वरूप हो जाते हैं। वे भगवान को बुलाते नहीं। वे जानते हैं कि रोम-रोम में, अनंत-अनंत ब्रह्माण्डों में जो ठोस भरा है वह अपने हृदय में भी है। ज्ञानी अपने हृदय में ईश्वर को जगा लेते हैं, स्वयं ईश्वरस्वरूप बन जाते हैं। वे पक्के गुरु के चेले होते हैं, ऐसे वैसे नहीं होते।

कर्मावती 18 साल की हुई। उसका साधन-भजन ठीक से आगे बढ़ रहा था। बेटी उम्र लायक होने से पिता परशुरामजी को भी चिन्ता होने लगी कि इस कन्या को भक्ति का रंग लग गया है। यदि शादी के लिए ना बोल देगी तो? ऐसी बातों में मर्यादा, शर्म, संकोच खानदानी के ख्यालों का वह जमाना था। कर्मावती की इच्छा न होते हुए भी पिता ने उसकी मँगनी करा दी। कर्मावती कुछ नहीं बोल पायी।

शादी का दिन नजदीक आने लगा। वह रोज परमात्मा से प्रार्थना करने लगी और सोचने लगीः "मेरा संकल्प तो है परमात्मा को पाने का, ईश्वर के ध्यान में तल्लीन रहने का। शादी हो जायेगी तो संसार के कीचड़ में फँस मरूँगी। अगले कई जन्मों में भी मेरे कई पति होंगे, माता पिता होंगे, सास-श्वसुर होंगे। उनमें से किसी

ने मृत्यु से नहीं छुड़ाया। मुझे अकेले ही मरना पड़ा। अकेले ही माता के गर्भ में उल्टा होकर लटकना पड़ा। इस बार भी मेरे परिवारवाले मुझे मृत्यु से नहीं बचायेंगे।

मृत्यु आकर जब मनुष्य को मार डालती है, तब परिवाले सह लेते हैं कुछ कर नहीं पाते, चुप हो जाते हैं। यदि मृत्यु से सदा के लिए पीछा छुड़ानेवाले ईश्वर के रास्ते पर चलते हैं तो कोई जाने नहीं देता।

हे प्रभु ! क्या तेरी लीला है ! मैं तुझे नहीं पहचानती लेकिन तू मुझे जानता है न? मैं तुम्हारी हूँ। हे सृष्टिकर्ता ! तू जो भी है, जैसा भी है, मेरे हृदय में सत्प्रेरणा दे।"

इस प्रकार भीतर-ही-भीतर भगवान से प्रार्थना करके कर्मावती शांत हो जाती तो भीतर से आवाज आतीः "हिम्मत रखो.... डरो नहीं.... पुरुषार्थ करो। मैं सदा तुम्हारे साथ हूँ।" कर्मावती को कुछ तसल्ली-सी मिल जाती।

शादी का दिन नजदीक आने लगा तो कर्मावती फिर सोचने लगीः "मैं कुंवारी लड़की... सप्ताह के बाद शादी हो जायेगी। मुझे घसीट के ससुराल ले जायेंगे। अब मेरा क्या होगा...?" ऐसा सोचकर वह बेचारी रो पड़ती। अपने पूजा के कमरे में रोते-रोते प्रार्थना करती, आँसू बहाती। उसके हृदय पर जो गुजरता था उसे वह जानती थी और दूसरा जानता था परमात्मा।

'शादी को अब छः दिन बचे... पाँच दिन बचे.... चार दिन बचे।' जैसे कोई फाँसी की सजा पाया हुआ कैदी फाँसी की तारीख सुनकर दिन गिन रहा हो, ऐसे ही वह दिन गिन रही थी।

शादी के समय कन्या को वस्त्राभूषण से, गहने-अलंकारों से सजाया जाता है, उसकी प्रशंसा की जाती है। कर्मावती यह सब सांसारिक तरीके समझते हुए सोच रही थी कि "जैसे बैल को पुचकार कर गाड़ी में जोता जाता है, ऊँट को पुचकार कर ऊँटगाड़ी में जोता जाता है, भैंस को पुचकार कर भैंसगाड़ी में जोता जाता है, प्राणी को फुसलाकर शिकार किया जाता है वैसे ही लोग मुझे पुचकार-पुचकार कर अपना मनमाना मुझसे करवा लेंगे। मेरी जिन्दगी से खेलेंगे।"

"हे परमात्मा ! हे प्रभु ! जीवन इन संसारी पुतलों के लिए नहीं, तेरे लिये मिला है। हे नाथ ! मेरा जीवन तेरे काम आ जाये, तेरी प्राप्ति में लग जाये। हे देव ! हे दयालु ! हे जीवनदाता !...." ऐसे पुकारते-पुकारते कर्मावती कर्मावती नहीं रहती थी, ईश्वर की पुत्री हो जाती थी। जिस कमरे में बैठकर वह प्रभु के लिए रोया करती थी, आँसू बहाया करती थी। जिस कमरे में बैठकर वह प्रभु के लिए रोया करती थी, आँसू बढ़ाया करती थी वह कमरा भी कितना पावन हो गया होगा। !

शादी के अब तीन दिन बचे थे.... दो दिन बचे थे... रात को नींद नहीं, दिन को चैन नहीं। रोते-रोते आँखें लाल हो गयीं। माँ पुचकारती, भाभी दिलासा देती और भाई रिझाता लेकिन कर्मावती समझती कि यह सारा पुचकार बैल को गाड़ी में जोतने के लिए हैं.... यह सारा स्नेह संसार के घट में उतारने के लिए है....

"हे भगवान ! मैं असहाय हूँ.... निर्बल हूँ.... हे निर्बल के बल राम ! मुझे सत्प्रेरणा दे.... मुझे सन्मार्ग दिखा।"

कर्मावती की आँखों में आँसू हैं... हृदय में भावनाएँ छलक रही हैं और बुद्धि में द्विधा हैः 'क्या करूँ? शादी को इन्कार तो कर नहीं सकती.... मेरा स्त्री शरीर...? क्या किया जाये?'

भीतर से आवाज आयीः "तू अपने के स्त्री मत मान, अपने को लड़की मत मान, तू अपने को भगवदभक्त मान, आत्मा मान। अपने को स्त्री मानकर कब तक खुद को कोसती रहेगी? अपने को पुरुष मान कर कब तक बोझा ढोती रहेगी? मनुष्यत्व तो तुम्हारा चोला है। शरीर का एक ढाँचा है। तेरा कोई आकार नहीं है। तू तो निराकार बलस्वरूप आत्मा है। जब-जब तू चाहेगी, तब-तब तेरा मार्गदर्शन होता रहेगा। हिम्मत मत हार। पुरुषार्थ परम देव है। हजार विघ्न-बाधाएँ आ जायें, फिर भी अपने पुरुषार्थ से नहीं हटना।"

तुम साधना के मार्ग पर चलते हो तो जो भी इन्कार करते हैं, पराये लगते हैं, शत्रु जैसे लगते हैं वे भी, जब तुम साधना में उन्नत होंगे, ब्रह्मज्ञान में उन्नत होंगे तब तुमको अपना मानने लग जायेंगे, शत्रु भी मित्र बन जायेंगे। कई महापुरुषों का यह अनुभव हैः

आँधी और तूफान हमको न रोक पाये।
मरने के सब इरादे जीने के काम आये।
हम भी हैं तुम्हारे कहने लगे पराये।।

कर्मावती को भीतर से हिम्मत मिली। अब शादी को एक ही दिन बाकी रहा। सूर्य ढलेगा... शाम होगी, रात्री होगी.... फिर सूर्योदय होगा... और शादी का दिन.... इतने ही घण्टे बीच में? अब समय नहीं गँवाना है। रात सोकर या रोकर नहीं गँवानी है। आज की रात जीवन या मौत की निर्णायक रात होगी।

कर्मावती ने पक्का निर्णय कर लियाः "चाहे कुछ भी हो जाये, कल सुबह बारात के घर के द्वार पर आये उसके पहले यहाँ से भागना पड़ेगा। बस यही एक मार्ग है, यही आखिरी फैसला है।"

क्षण..... मिनट.... और घण्टे बीत रहे थे। परिवार वाले लोग शादी की जोरदार तैयारियाँ कर रहे थे। कल सुबह बारात का सत्कार करना था, इसका इंतजाम हो रहा था। कई सगे-सम्बन्थी-मेहमान घर पर आये हुए थे। कर्मावती अपने कमरे में यथायोग्य मौके के इंतजार में घण्टे गिन रही थी।

दोपहर ही.... शाम हुई.... सूर्य ढला.... कल के लिए पूरी तैयारियाँ हो चुकी थीं। रात्रि का भोजन हुआ, दिन के परिश्रम से थके लोग रात्रि को देरी से बिस्तर पर लेट गये। दिन भर जहाँ शोरगुल मचा था, वहाँ शांति छा गयी।

ग्यारह बजे... दीवार की घड़ी ने डंके बजाये... फिर टिक्... टिक्.... टिक्... टिक्...क्षण मिनट में बदल रही हैं... घड़ी का काँटा आगे सरक रहा है.... सवा ग्यारह..... साढ़े ग्यारह.... फिर रात्री के नीरव वातावरण में घड़ी का एक डंका सुनाई पड़ा... टिक्....टिक्....टिक्.... पौने बारह..... घड़ी आगे बढ़ी... पन्द्रह मिनट और बीते.... बारह बजे... घड़ी ने बारह डंके बजाना शुरु किया.... कर्मावती गिनने लगीः एक... दो... तीन... चार... दस... ग्यारह... बारह।

अब समय हो गया। कर्मावती उठी। जाँच लिया कि घर में सब नींद में खुर्राटे भर रहे हैं। पूजा घर में बाँकेबिहारी कृष्ण कन्हैया को प्रणाम किया... आँसू भरी आँखों से उसे एकटक निहारा... भावविभोर होकर अपने प्यारे परमात्मा के रूप को गले लगा लिया और बोलीः "अब मैं आ रही हूँ तेरे द्वार.... मेरे लाला....!"

चुपके से द्वार खोला, दबे पाँव घर से बाहर निकली। उसने आजमाया कि आँगन में भी कोई जागता नहीं है? .... कर्मावती आगे बढ़ी। आँगन छोड़कर गली में आ गयी। फिर सर्राटे से भागने लगी। वह गलियाँ पार

करती हुई रात्रि के अंधकार में अपने को छुपाती नगर से बाहर निकल गयी और जंगल का रास्ता पकड़ लिया। अब तो वह दौड़ने लगी थी। घरवाले संसार के कीचड़ में उतारें उसके पहले बाँके बिहारी गिरधर गोपाल के धाम में उसे पहुँच जाना था। वृन्दावन कभी देखा नहीं था, उसके मार्ग का भी उसे पता नहीं था लेकिन सुन रखा था कि इस दिशा में है।

कर्मावती भागती जा रही है। कोई देख लेगा अथवा घर में पता चल जायेगा तो लोग खजाने निकल पड़ेंगे.... पकड़ी जाऊँगी तो सब मामला चौपट हो जायेगा। संसारी माता-पिता इज्जत-आबरू का ख्याल करके शादी कराके ही रहेंगे। चौकी पहरा बिठा देंगे। फिर छूटने का कोई उपाय नहीं रहेगा। इस विचार से कर्मावती के पैरों में ताकत आ गयी। वह मानों, उड़ने लगी। ऐसे भागी, ऐसे भागी कि बस.... मानों, बंदूक लेकर कोई उसके पीछे पड़ा हो।

सुबह हुई। उधर घर में पता चला कि कर्मावती गायब है। अरे ! आज तो हक्के-बक्के से हो गये। इधर-उधर छानबीन की, पूछताछ की, कोई पता नहीं चला। सब दुःखी हो गये। परशुराम भक्त थे, माँ भी भक्त थी। फिर भी उन लोगों को समाज में रहना था। उन्हें खानदानी इज्जत-आबरू की चिन्ता थी। घर में वातावरण चिन्तित बन गया कि 'बारातवालों को क्या मुँह दिखायेंगे? क्या जवाब देंगे? समाज के लोग क्या कहेंगे?"

फिर भी माता-पिता के हृदय में एक बात की तसल्ली थी कि हमारी बच्ची किसी गलत रास्ते पर नहीं गयी है, जा ही नहीं सकती। उसका स्वभाव, उसके संस्कार वे अच्छी तरह जानते थे। कर्मावती भगवान की भक्त थी। कोई गलत मार्ग लेने का वह सोच ही नहीं सकती थी। आजकल तो कई लड़कियाँ अपने यार-दोस्त के साथ पलायन हो जाती है। कर्मावती ऐसी पापिनी नहीं थी।

परशुराम सोचते हैं कि बेटी परमात्मा के लिए ही भागी होगी, फिर भी क्या करूँ? इज्जत का सवाल है। राजपुरोहित के खानदान में ऐसा हो? क्या किया जाये? आखिर उन्होंने अपने मालिक शेखावत सरदार की शरण ली। दुःखी स्वर में कहाः "मेरी जवान बेटी भगवान की खोज में रातोंरात कहीं चली गयी है। आप मेरी सहायता करें। मेरी इज्जत का सवाल है।"

सरदार परशुराम के स्वभाव से परिचित थे। उन्होंने अपने घुड़सवार सिपाहियों को चहुँ ओर कर्मावती की खोज में दौड़ाया। घोषणा कर दी कि जंगल-झाड़ियों में, मठ-मंदिरों में, पहाड़-कंदराओं में, गुरुकुल-आश्रमों में – सब जगह तलाश करो। कहीं से भी कर्मावती को खोज कर लाओ। जो कर्मावती को खोजकर ले आयेगा, उसे दस हजार मुद्रायें इनाम में दी जायेंगी।

घुड़सवार चारों दिशा में भागे। जिस दिशा में कर्मावती भागी थी, उस दिशा में घुड़सवारों की एक टुकड़ी चल पड़ी। सूर्योदय हो रहा था। धरती पर से रात्रि ने अपना आँचल उठा लिया था। कर्मावती भागी जा रही थी। प्रभात के प्रकाश में थोड़ी चिन्तित भी हुई कि कोई खोजने आयेगा तो आसानी से दिख जाऊँगी, पकड़ी जाऊँगी। वह वीरांगना भागी जा रही है और बार-बार पीछे मुड़कर देख रही है।

दूर-दूर देखा तो पीछे रास्ते में धूल उड़ रही थी। कुछ ही देर में घुड़सवारों की एक टुकड़ी आती हुई दिखाई दी। वह सोच रही हैः "हे भगवान ! अब क्या करूँ? जरूर ये लोग मुझे पकड़ने आ रहे हैं। सिपाहियों के

आगे मुझ निर्बल बालिका क्या चलेगा? चहुँओर उजाला छा गया है। अब तो घोड़ों की आवाज भी सुनाई पड़ रही है। कुछ ही देर में वे लोग आ जायेंगे। सोचने का भी समय अब नहीं रहा।"

कर्मावती ने देखाः रास्ते के किनारे मरा हुआ एक ऊँट पड़ा था। पिछले दिन ही मरा था और रात को सियारों ने उसके पेट का माँस खाकर पेट की जगह पर पोल बना दिया था। कर्मावती के चित्त में अनायास एक विचार आया। उसने क्षणभर में सोच लिया कि इस मरे हुए ऊँट के खाली पेट में छुप जाऊँ तो उन कातिलों से बच सकती हूँ। वह मरे हुए, सड़े हुए, बदबू मारनेवाले ऊँट के पेट में घुस गयी।

घुड़सवार की टुकड़ी रास्ते के इर्दगिर्द पेड़-झाड़ी-झाँखड़, छिपने जैसे सब स्थानों की तलाश करती हुई वहाँ आ पहुँची। सिपाही मरे हुए ऊँट के पाय आये तो भयंकर दुर्गन्ध। वे अपना नाक-मुँह सिकोड़ते, बदबू से बचने के लिए आगे बह गये। वहाँ तलाश करने जैसा था भी क्या?

कर्मावती ऐसी सिर चकरा देने वाली बदबू के बीच छुपी थी। उसका विवेक बोल रहा था कि संसार के विकारों की बदबू से तो इस मरे हुए ऊँट की बदबू बहुत अच्छी है। संसार के काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर की जीवनपर्यन्त की गन्दगी से तो यह दो दिन की गन्दगी अच्छी है। संसार की गन्दगी तो हजारों जन्मों की गन्दगी में त्रस्त करेगी, हजारों-लाखों बार बदबूवाले अंगों से गुजरना पड़ेगा, कैसी-कैसी योनियों में जन्म लेना पड़ेगा। मैं वहाँ से अपनी इच्छा के मुताबिक बाहर नहीं निकल सकती। ऊँट के शरीर से मैं कम-से-कम अपनी इच्छानुसार बाहर तो निकल जाऊँगी।'

कर्मावती को मरे हुए, सड़ चुके ऊँट के पेट के पोल की वह बदबू इतनी बुरी नहीं लगी, जितनी बुरी संसार के विकारों की बदबू लगी। कितनी बुद्धिमान रही होगी वह बेटी !

कर्मावती पकड़े जाने के डर से उसी पोल में एक दिन.. दो दिन... तीन दिन तक पड़ी रही। जल्दबाजी करने से शायद मुसीबत आ जाये ! घुड़सवार खूब दूर तक चक्कर लगाकर दौड़ते, हाँफते, निराश होकर वापस उसी रास्ते से गुजर रहे थे। वे आपस में बातचीत कर रहे थे कि "भाई ! वह तो मर गयी होगी। किसी कुएँ या तालाब में गिर गयी होगी। अब उसका हाथ लगना मुश्किल है।" पोल में पड़ी कर्मावती ये बातें सुन रही थी।

सिपाही दूर-दूर चले गये। कर्मावती को पता चला फिर भी दो-चार घण्टे और पड़ी रही। शाम ढली, रात्री हुई, चहुँ ओर अँधेरा छा गया। जब जंगल में सियार बोलने लगे, तब कर्मावती बाहर निकली। उसने इधर-उधर देख लिया। कोई नहीं था। भगवान को धन्यवाद दिया। फिर भागना शुरु किया। भयावह जंगलों से गुजरते हुए हिंसक प्राणियों की डरावनी आवाजें सुनती कर्मावती आगे बढ़ी जा रही थी। उस वीर बालिका को जितना संसार का भय था, उतना क्रूर प्राणियों का भय नहीं था। वह समझती थी कि "मैं भगवान की हूँ और भगवान मेरे हैं। जो हिंसक प्राणी हैं वे भी तो भगवान के ही हैं, उनमें भी मेरा परमात्मा है। वह परमात्मा प्राणियों को मुझे खा जाने की प्रेरणा थोड़े ही देगा ! मुझे छिप जाने के लिए जिस परमात्मा ने मरे हुए ऊँट की पोल दी, सिपाहियों का रुख बदल दिया वह परमात्मा आगे भी मेरी रक्षा करेगा। नहीं तो यह कहाँ रास्ते के किनारे ही ऊँट का मरना, सियारों का माँस खाना, पोल बनना, मेरे लिए घर बन जाना? घर में घर जिसने बना दिया वह परम कृपालु परमात्मा मेरा पालक और रक्षक है।"

ऐसा दृढ़ निश्चय कर कर्मावती भागी जा रही है। चार दिन की भूखी-प्यासी वह सुकुमार बालिका भूख-प्यास को भूलकर अपने गन्तव्य स्थान की तरफ दौड़ रही है। कभी कहीं झरना मिल जाता तो पानी पी लेती। कोई जंगली फल मिले तो खा लेती, कभी-कभी पेड़ के पत्ते ही चबाकर क्षुधा-निवृत्ति का एहसास कर लेती।

आखिर वह परम भक्ति बालिका वृन्दावन पहुँची। सोचा कि इसी वेश में रहूँगी तो मेरे इलाके के लोग पहचान लेंगे, समझायेंगे, साथ चलने का आग्रह करेंगे। नहीं मानूँगी जबरन पकड़कर ले जायेंगे। इससे अपने को छुपाना अति आवश्यक है। कर्मावती ने वेश बदल दिया। सादा फकीर-वेश धारण कर लिया। एक सादा श्वेत वस्त्र, गले में तुलसी की माला, ललाट पर तिलक। वृन्दावन में रहनेवाली और भक्तिनों जैसी भक्तिन बन गयी।

कर्मावती के कुटुम्बीजन वृन्दावन आये। सर्वत्र खोज की। कोई पता नहीं चला। बाँकेबिहारी के मंदिर में रहे, सुबह शाम छुपकर तलाश की लेकिन उन दिनों कर्मावती मंदिर में क्यों जाये? बुद्धिमान थी वह।

वृन्दावन में ब्रह्मकुण्ड के पास एक साधु रहते थे। जहाँ भूले-भटके लोग ही जाते वह ऐसी जगह थी, वहाँ कर्मावती पड़ी रही। वह अधिक समय ध्यानमग्न रहा करती, भूख लगती तब बाहर जाकर हाथ फैला देती। भगवान की प्यारी बेटी भिखारी के वेश में टुकड़ा खा लेती।

जयपुर से भाई आया, अन्य कुटुम्बीजन आये। वृन्दावन में सब जगह खोजबीन की। निराश होकर सब लौट गये। आखिर पिता राजपुरोहित परशुराम स्वयं आये। उन्हें हृदय में पूरा यकीन था कि मेरी कृष्णप्रिया बेटी श्रीकृष्ण के धाम के अलावा और कहीं न जा सकती। सुसंस्कारी, भगवदभक्ति में लीन अपनी सुकोमल, प्यारी बच्ची के लिए पिता का हृदय बहुत व्यथित था। बेटी की मंगल भावनाओं को कुछ-कुछ समझनेवाले परशुराम का जीवन निस्सार-सा हो गया था। उन्होंने कैसे भी करके कर्मावती को खोजने का दृढ़ संकल्प कर लिया। कभी किसी पेड़ पर तो कभी किसी पेड़ पर चढ़कर मार्ग के पासवाले लोगों की चुपके से निगरानी रखते, सुबह से शाम तक रास्ते गुजरते लोगों को ध्यानपूर्वक निहारते कि शायद, किसी वेश में छिपी हुई अपनी लाडली का मुख दिख जाय !

पेड़ों पर से एक साध्वी को, एक-एक भक्तिन को, भक्त का वेश धारण किये हुए एक-एक व्यक्ति को परशुराम बारीकी से निहारते। सुबह से शाम तक उनकी यही प्रवृत्ति रहती। कई दिनों के उनका तप भी फल गया। आखिर एक दिन कर्मावती पिता की जासूस दृष्टि में आ ही गयी। परशुराम झटपट पेड़ से नीचे उतरे और वात्सल्य भाव से, रूँधे हुए हृदय से 'बेटी.... बेटी...' कहते हुए कर्मावती का हाथ पकड़ लिया। पिता का स्नेहिल हृदय आँखों के मार्ग से बहने लगा। कर्मावती की स्थिति कुछ और ही थी। ईश्वरीय मार्ग में ईमानदारी से कदम बढ़ानेवाली वह साधिका तीव्र विवेक-वैराग्यवान हो चली थी, लौकिक मोह-ममता से सम्बन्धों से ऊपर उठ चुकी थी। पिता की स्नेह-वात्सल्यरूपी सुवर्णमय जंजीर भी उसे बाँधने में समर्थ नहीं थी। पिता के हाथ से अपना हाथ छुड़ाते हुए बोलीः

'मैं तो आपकी बेटी नहीं हूँ। मैं तो ईश्वर की बेटी हूँ। आपके वहाँ तो केवल आयी थी कुछ समय के लिए। गुजरी थी आपके घर से। अगले जन्मों में भी मैं किसी की बेटी थी, उसके पहले भी किसी की बेटी थी। हर जन्म में बेटी कहने वाले बाप मिलते रहे हैं, माँ कहने वाले बेटे मिलते रहे हैं, पत्नी कहने वाले पति मिलते

रहे हैं। आखिर में कोई अपना नहीं रहता है। जिसकी सत्ता से अपना कहा जाता है, जिससे यह शरीर टिकता है वह आत्मा-परमात्मा, वे श्रीकृष्ण ही अपने हैं। बाकी सब धोखा-ही-धोखा है – सब मायाजाल है।"

राजपुरोहित परशुराम शास्त्र के अभ्यासी थे, धर्मप्रेमी थे, संतों के सत्संग में जाया करते थे। उन्हें बेटी की बात में निहित सत्य को स्वीकार करना पड़ा। चाहे पिता हो, चाहे गुरु हो सत्य बात तो सत्य ही होती है। बाहर चाहे कोई इन्कार कर दे, किंतु भीतर तो सत्य असर करता ही है।

अपनी गुणवान संतान के प्रति मोहवाले पिता का हृदय माना नहीं। वे इतिहास, पुराण और शास्त्रों में से उदाहरण ले-लेकर कर्मावती को समझाने लगे। बेटी को समझाने के लिए राजपुरोहित ने अपना पूरा पांडित्य लगा दिया पर कर्मावती....? पिता के विद्वतापूर्ण प्रश्न सुनते-सुनते यही सोच रही थी कि पिता का मोह कैसे दूर हो सके। उसकी आँखों में भगवदभाव के आँसू थे, ललाट पर तिलक, गले में तुलसी की माला। मुख पर भक्ति का ओज आ गया था। वह आँखे बन्द करके ध्यान किया करती थी। इससे आँखों में तेज और चुम्बकत्व आ गया था। पिता का मंगल हो, पिता का मेरे प्रति मोह न रहे। ऐसी भावना कर हृदय में दृढ़ संकल्प कर कर्मावती ने दो-चार बार पिता की तरफ निहारा। वह पण्डित तो नहीं थी लेकिन जहाँ से हजारों-हजारों पण्डितों को सत्ता-स्फूर्ति मिलती है, उस सर्वसत्ताधीश का ध्यान किया करती थी। आखिर पंडितजी की पंडिताई हार गयी और भक्त की भक्ति जीत गयी। परशुराम को कहना पड़ाः "बेटी ! तू सचमुच मेरी बेटी नहीं है, ईश्वर की बेटी है। अच्छा, तू खुशी से भजन कर। मैं तेरे लिए यहाँ कुटिया बनवा देता हूँ, तेरे लिए एक सुहावना आश्रम बनवा देता हूँ।"

"नहीं, नहीं...." कर्मावती सावधान होकर बोलीः "यहाँ आप कुटिया बनायें तो कल माँ आयेगी, परसों भाई आयेगा, तरसों चाचा-चाची आयेंगे, फिर मामा-मामी आयेंगे। फिर से वह संसार चालू हो जायेगा। मुझे यह माया नहीं बढ़ानी है।"

कैसा बच्ची का विवेक है ! कैसा तीव्र वैराग्य है ! कैसा दृढ़ संकल्प है ! कैसी साधना सावधानी है ! धन्य है कर्मावती !

परशुराम निराश होकर वापस लौट गये। फिर भी हृदय में संतोष था कि मेरा हक्क का अन्न था, पवित्र अन्न था, शुद्ध आजीविका थी तो मेरे बालक को भी नाहकर के विकार और विलास के बदले हक्क स्वरूप ईश्वर की भक्ति मिली है। मुझे अपने पसीने की कमाई का बढ़िया फल मिला। मेरा कुल उज्जवल हुआ। वाह.....!

परशुराम अगर तथाकथित धार्मिक होते, धर्मभीरू होते तो भगवान को उलाहना देतेः 'भगवान ! मैंने तेरी भक्ति की, जीवन में सच्चाई से रहा और मेरी लड़की घर छोड़कर चली गयी? समाज में मेरी इज्जत लुट गयी...' ऐसा विचार कर सिर पीटते।

परशुराम धर्मभीरू नहीं थे। धर्मभीरू यानी धर्म से डरनेवाले लोग। ऐसे लोग कई प्रकार के वहमों में अपने को पीसते रहते हैं?

धर्म क्या है? ईश्वर को पाना ही धर्म है और संसार को 'मेरा' मानना संसार के भोगों में पड़ना अधर्म है। यह बात जो जानते हैं, वे धर्मवीर होते हैं।

परशुराम बाहर से थोड़े उदास और भीतर से पूरे संतुष्ट होकर घर लौटे। उन्होंने राजा शेखावत सरदार से बेटी कर्मावती की भक्ति और वैराग्य की बात कही। वह बड़ा प्रभावित हुआ। शिष्यभाव से वृन्दावन में आकर उसने कर्मावती के चरणों में प्रणाम किया, फिर हाथ जोड़कर आदरभाव से विनीत स्वर में बोलाः

"हे देवी ! हे जगदीश्वरी ! मुझे सेवा का मौका दो। मैं सरदार होकर नहीं आया, आपके पिता का स्वामी होकर नहीं आया, आपके पिता का स्वामी हो कर नहीं आया अपितु आपका तुच्छ सेवक बनकर आया हूँ। कृपया इन्कार मत करना। ब्रह्मकुण्ड पर आपके लिए छोटी-सी कुटिया बनवा देता हूँ। मेरी प्रार्थना को ठुकराना नहीं।"

कर्मावती ने सरदार को अनुमति दे दी। आज भी वृन्दावन में ब्रह्मकुण्ड के पास की वह कुटिया मौजूद है।

पहले अमृत जैसा पर बाद में विष से बदत्तर हो, वह विकारों का सुख है। प्रारंभ में कठिन लगे, दुःखद लगे, बाद में अमृत से भी बढ़कर हो, वह भक्ति का सुख पाने के लिए बहुत कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है, कई प्रकार की कसौटियाँ आती हैं। भक्त का जीवन इतना सादा, सीधा-सरल, आडम्बररहित होता है कि बाहर से देखने वाले संसारी लोगों को दया आती हैः 'बेचारा भगत है, दुःखी है।' जब भक्ति फलती है, तब वे ही सुखी दिखने वाले हजारों लोग उस भक्त-हृदय की कृपा पाकर अपना जीवन धन्य करते हैं। भगवान की भक्ति की बड़ी महिमा है !

जय हो प्रभु ! तेरी जय हो। तेरे प्यारे भक्तों की जय हो। हम भी तेरी पावन भक्ति में डूब जायें। परमेश्वर! ऐसे पवित्र दिन जल्दी आयें। नारायण....! नारायण.....!! नारायण....!!

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

अनुक्रम

वास्तविक सौन्दर्य

सौन्दर्य सबके जीवन की माँग है। वास्तविक सौन्दर्य उसे नहीं कहते जो आकर चला जाये। जो कभी क्षीण हो जाये, नष्ट हो जाये वह सौन्दर्य नहीं है। संसारी लोग जिसे सौन्दर्य बोलते हैं वह हाड़-मांस का सौन्दर्य तब तक अच्छा लगता है जब तक मन में विकार होता है अथवा तो तब तक अच्छा लगता है जब तक बाहरी रूप-रंग अच्छा होता है। फिर तो लोग उससे भी मुँह मोड़ लेते हैं। किसी व्यक्ति या वस्तु का सौन्दर्य हमेशा टिक नहीं सकता और परम सौन्दर्यस्वरूप परमात्मा का सौन्दर्य कभी मिट नहीं सकता।

एक राजकुमारी थी। वह सुन्दर, संयमी एवं सदाचारी थी तथा सदग्रन्थों का पठन भी करती थी। उस राजकुमारी की निजी सेवा में एक विधवा दासी रखी गयी थी। उस दासी के साथ राजकुमारी दासी जैसा नहीं बल्कि वृद्धा माँ जैसा व्यवहार करती थी।

एक दिन किसी कारणवशात् उस दासी का 20-22 साल का युवान पुत्र राजमहल में अपनी माँ के पास आया। वहाँ उसने राजकुमारी को भी देखा। राजकुमारी भी करीब 18-21 साल की थी। सुन्दरता तो मानों, उसमें

कूट-कूट कर भरी थी। राजकुमारी का ऐसा सौन्दर्य देखकर दासीपुत्र अत्यंत मोहित हो गया। वह कामपीड़ित होकर वापस लौटा।

जब दासी अपने घर गयी तो देखा कि अपना पुत्र मुँह लटकाये बैठा है। दासी के बहुत पूछने पर लड़का बोलाः "मेरी शादी तुम उस राजकुमारी के साथ करवा दो।"

दासीः "तेरी मति तो नहीं मारी गयी? कहाँ तू विधवा दासी का पुत्र और कहाँ वह राजकुमारी? राजा को पता चलेगा तो तुझे फाँसी पर लटका देंगे।"

लड़काः "वह सब मैं नहीं जानता। जब तक मेरी शादी राजकुमारी के साथ नहीं होगी, तब तक मैं अन्न का एक दाना भी खाऊँगा।"

उसने कमस खाली। एक दिन... दो दिन... तीन दिन.... ऐसा करते-करते पाँच दिन बीत गये। उसने न कुछ खाया, न कुछ पिया। दासी समझाते-समझाते थक गयी। बेचारी का एक ही सहारा था। पति तो जवानी में ही चल बसा था और एक-एक करके दो पुत्र भी मर गये थे। बस, यह ही लड़का था, वह भी ऐसी हठ लेकर बैठ गया।

समझदार राजकुमारी ने भाँप लिया कि दासी उदास-उदास रहती है। जरूर उसे कोई परेशानी सता रही है। राजकुमारी ने दासी से पूछाः "सच बताओ, क्या बात है? आजकल तुम बड़ी खोयी-खोयी-सी रहती हो?"

दासीः "राजकुमारीजी ! यदि मैं आपको मेरी व्यथा बता दूँ तो आप मुझे और मेरे बेटे को राज्य से बाहर निकलवा देंगी।"

ऐसा कहकर दासी फूट-फूटकर रोने लगी।

राजकुमारीः "मैं तुम्हें वचन देती हूँ। तुम्हें और तुम्हारे बेटे को कोई सजा नहीं दूँगी। अब तो बताओ !"

दासीः "आपको देखकर मेरा लड़का अनधिकारी माँग करता है कि शादी करूँगा तो इस सुन्दरी से ही करूँगा और जब तक शादी नहीं होती तब तक भोजन नहीं करूँगा। आज पाँच दिन से उसने खाना-पीना छोड़ रखा है। मैं तो समझा-समझाकर थक गयी।"

राजकुमारीः "चिन्ता मत करो। तुम कल उसको मेरे पास भेज देना। मैं उसकी वास्तविक शादी करवा दूँगी।"

लड़का खुश होकर पहुँच गया राजकुमारी से मिलने। राजकुमारी ने उससे कहाः "मुझसे शादी करना चाहता है?"

"जी हाँ।"

"आखिर किस वजह से?"

"तुम्हारे मोहक सौन्दर्य को देखकर मैं घायल हो गया हूँ।"

"अच्छा ! तो तू मेरे सौन्दर्य की वजह से मुझसे शादी करना चाहता है? यदि मैं तुझे 80-90 प्रतिशत सौन्दर्य दे दूँ तो तुझे तृप्ति होगी? 10 प्रतिशत सौन्दर्य मेरे पास रह जायेगा तो तुझे तृप्ति होगी? 10 प्रतिशत सौन्दर्य मेरे पास रह जायेगा तो तुझे चलेगा न?"

"हाँ, चलेगा।"

"ठीक है.... तो कल दोपहर को आ जाना।"

राजकुमारी ने रात को जमालगोटे का जुलाब ले लिया जिससे रात्रि को दो बजे जुलाब के कारण हाजत तीव्र हो गयी। पूरे पेट की सफाई करके सारा कचरा बाहर। राजकुमारी ने सुन्दर नक्काशीदार कुण्डे में अपने पेट का वह कचरा डाल दिया। कुछ समय बाद उसे फिर से हाजत हुई तो इस बार जरीकाम और मलमल से सुसज्जित कुंडे में राजकुमारी ने कचरा उतार दिया। दोनों कुंडों को चारपाई के एक-एक पाये के पास रख दिया। उसके बाद फिर से एक बार जमालघोटे का जुलाब ले लिया। तीसरा दस्त तीसरे कुण्डे में किया। बाकी का थोड़ा-बहुत जो बचा हुआ मल था, विष्ठा थी उसे चौथी बार में चौथे कुंडे में निकाल दिया। इन दो कुंडों को भी चारपाई के दो पायों के पास में रख दिया।

एक ही रात जमालगोटे के कारण राजकुमारी का चेहरा उतर गया, शरीर खोखला सा हो गया। राजकुमारी की आँखें उतर गयीं, गालों की लाली उड़ गयी, शरीर एकदम कमजोर पड़ गया।

दूसरे दिन दोपहर को वह लड़का खुश होता हुआ राजमहल में आया और अपनी माँ से पूछने लगाः "कहाँ है राजकुमारी जी?"

दासीः "वह सोयी है चारपाई पर।"

राजकुमारी के नजदीक जाने से उसका उतरा हुआ मुँह देखकर दासीपुत्र को आशंका हुई। ठीक से देखा तो चौंक पड़ा और बोलाः

"अरे ! तुम्हें या क्या हो गया? तुम्हारा चेहरा इतना फीका क्यों पड़ गया है? तुम्हारा सौन्दर्य कहाँ चला गया?"

राजकुमारी ने बहुत धीमी आवाज में कहाः "मैंने तुझे कहा था न कि मैं तुझे अपना 90 प्रतिशत सौन्दर्य दूँगी, अतः मैंने सौन्दर्य निकालकर रखा है।"

"कहाँ है?" आखिर तो दासीपुत्र था, बुद्धि मोटी थी।

"इस चारपाई के पास चार कुंडे हैं। पहले कुंडे में 50 प्रतिशत, दूसरे में 25 प्रतिशत सौन्दर्य दूँगी, अतः मैंने सौन्दर्य निकालकर रखा है।"

"कहाँ है?" आखिर तो दासीपुत्र था, बुद्धि मोटी थी।

"इस चारपाई के पास चार कुंडे हैं। पहले कुंडे में 50 प्रतिशत, दूसरे में 25 प्रतिशत तीसरे कुंडे में 10 प्रतिशत और चौथे में 5-6 प्रतिशत सौन्दर्य आ चुका है।"

"मेरा सौन्दर्य है। रात्रि के दो बजे से सँभालकर कर रखा है।"

दासीपुत्र हैरान हो गया। वह कुछ समझ नहीं पा रहा था। राजकुमारी ने दासी पुत्र का विवेक जागृत हो इस प्रकार उसे समझाते हुए कहाः "जैसे सुशोभित कुंडे में विष्ठा है ऐसे ही चमड़े से ढँके हुए इस शरीर में यही सब कचरा भरा हुआ है। हाड़-मांस के जिस शरीर में तुम्हें सौन्दर्य नज़र आ रहा था, उसे एक जमालगोटा ही नष्ट कर डालता है। मल-मूत्र से भरे इस शरीर का जो सौन्दर्य है, वह वास्तविक सौन्दर्य नहीं है लेकिन इस मल-मूत्रादि को भी सौन्दर्य का रूप देने वाला वह परमात्मा ही वास्तव में सबसे सुन्दर है भैया ! तू उस सौन्दर्यवान परमात्मा को पाने के लिए आगे बढ़। इस शरीर में क्या रखा है?"

दासीपुत्र की आँखें खुल गयीं। राजकुमारी को गुरु मानकर और माँ को प्रणाम करके वह सच्चे सौन्दर्य की खोज में निकल पड़ा। आत्म-अमृत को पीने वाले संतों के द्वार पर रहा और परम सौन्दर्य को प्राप्त करके जीवनमुक्त हो गया।

कुछ समय बाद वही भूतपूर्व दासी पुत्र घूमता-घामता अपने नगर की ओर आया और सरिता किनारे एक झोंपड़ी बनाकर रहने लगा। खराब बातें फैलाना बहुत आसान है किंतु अच्छी बातें, सत्संग की बातें बहुत परिश्रम और सत्य माँग लेती है। नगर में कोई हीरो या हीरोइन आती है तो हवा की लहर के साथ समाचार पूरे नगर में फैल जाता है लेकिन एक साधु, एक संत अपने नगर में आये हुए हैं, ऐसे समाचार किसी को जल्दी नहीं मिलते।

दासीपुत्र में से महापुरुष बने हुए उन संत के बारे में भी शुरुआत में किसी को पता नहीं चला परंतु बाद में धीरे-धीरे बात फैलने लगी। बात फैलते-फैलते राजदरबार तक पहुँची कि 'नगर में कोई बड़े महात्मा पधारे हुए हैं। उनकी निगाहों में दिव्य आकर्षण है, उनके दर्शन से लोगों को शांति मिलती है।'

राजा ने यह बात राजकुमारी से कही। राजा तो अपने राजकाज में ही व्यस्त रहा लेकिन राजकुमारी आध्यात्मिक थी। दासी को साथ में लेकर वह महात्मा के दर्शन करने गयी।

पुष्प-चंदन आदि लेकर राजकुमारी वहाँ पहुँची। दासीपुत्र को घर छोड़े 4-5 वर्ष बीत गये थे, वेश बदल गया था, समझ बदल चुकी थी, इस कारण लोग तो उन महात्मा को नहीं जान पाये लेकिन राजकुमारी भी नहीं पहचान पायी। जैसे ही राजकुमारी महात्मा को प्रणाम करने गयी कि अचानक वे महात्मा राजकुमारी को पहचान गये। जल्दी से नीचे आकर उन्होंने स्वयं राजकुमारी के चरणों में गिरकर दंडवत् प्रणाम किया।

राजकुमारीः "अरे, अरे.... यह आप क्या रहे हैं महाराज !"

"देवी ! आप ही मेरी प्रथम गुरु हैं। मैं तो आपके हाड़-मांस के सौन्दर्य के पीछे पड़ा था लेकिन इस हाड़-मांस को भी सौन्दर्य प्रदान करने वाले परम सौन्दर्यवान परमात्मा को पाने की प्रेरणा आप ही ने तो मुझे दी थी। इसलिए आप मेरी प्रथम गुरु हैं। जिन्होंने मुझे योगादि सिखाया वे गुरु बाद के। मैं आपका खूब-खूब आभारी हूँ।"

यह सुनकर वह दासी बोल उठीः "मेरा बेटा !"

तब राजकुमारी ने कहाः "अब यह तुम्हारा बेटा नहीं, परमात्मा का बेटा हो गया है.... परमात्म-स्वरूप हो गया है।"

धन्य हैं वे लोग जो बाह्य रूप से सुन्दर दिखने वाले इस शरीर की वास्तविक स्थिति और नश्वरता का ख्याल करके परम सुन्दर परमात्मा के मार्ग पर चल पड़ते हैं.....

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

अनुक्रम

आत्मविद्या की धनीः फुलीबाई

यह जोधपुर (राजस्थान) के पास के गाँव की महान नारी फुलीबाई की गाथा है। कहते हैं कि उनके पति शादी के थोड़े समय बाद ही स्वर्ग सिधार गये थे। उनके माता-पिता ने कहाः

"तेरा सच्चा पति तो परमात्मा ही है, बेटी ! चल, तुझे गुरुदेव के पास से दीक्षा दिलवा दें।"

उनके समझदार माता-पिता ने समर्थ गुरु महात्मा भूरीबाई से उन्हें दीक्षा दिलवा दी। अब फुलीबाई अपने गुरुदेव की आज्ञा के अनुसार साधना में लीन हो गयी। प्राणायाम, जप और ध्यान आदि करते-करते उनकी बुद्धिशक्ति विकसित होने लगी। वे इस बात को खूब अच्छे से समझने लगी कि प्राणीमात्र के परम हितैषी, सच्चे स्वामी तो एकमात्र परमात्मा ही हैं। धीरे-धीरे परमात्मा के रंग में अपने जीवन को रँगते-रँगते, प्रेमाभक्ति से अपने हृदय को भरते-भरते वे सुषुप्त शक्तियों को जागृत करने में सफल हो गयीं।

लौकिक विद्या में अनपढ़ वे फुलीबाई अलौकिक विद्या पाने में सफल हो गयीं। अब वे निराधार न रहीं बल्कि सर्वाधार के स्नेह से परिपूर्ण हो गयीं। उनके चित्त में नयी दिव्य स्फुरणाएँ स्फुरित होने लगीं। उनका जीवन परमात्म-प्रकाश से जगमगाने लगा। ऐहिक रूप से फुलीबाई बहुत गरीब थी किंतु उन्होंने वास्तविक धन को पा लिया था।

गोबर के कण्डे बना-बनाकर वे अपनी आजीविका चलाती थीं किंतु उनकी पड़ोसन उनके कण्डे चुरा लेती। एक बार फुलीबाई को उस स्त्री पर दया आयी एवं बोलीः

"बहन ! यदि तू चोरी करेगी तो तेरा मन अपवित्र होगा और भगवान तुझसे नाराज हो जायेंगे। अगर तुझे चाहिए तो मैं तुझे पाँच-पचीस कण्डे दे दिया करूँगी किंतु तू चोरी करके अपना, मन, एवं बुद्धि का एवं अपने कुटुम्ब का सत्यानाश मत कर।"

वह पड़ोसन स्त्री तो दुष्टा थी। वह तो फुलीबाई को गालियों पर गालियाँ देने लगी। इससे फुलीबाई के चित्त में जरा भी क्षोभ न हुआ वरन् उनके चित्त मे दया उपजी और वे बोलीः

"बहन ! मैं तुझे जो कुछ कह रही हूँ, वह तुम्हारी भलाई के लिए ही कह रही हूँ। तुम झगड़ो मत।"

चोरी करने वाली महिला को ज्यादा गुस्सा आ गया। फिर फुलीबाई ने भी थोड़ा-सा सुना दिया। झगड़ा बढ़ने लगा तो गाँव का मुखिया एवं ग्राम-पंचायत इकट्ठी हो गयी। सबसे एकत्रित देखकर वह चोरी करने वाली महिला बोलीः

"फुलीबाई चोर है, मेरे कण्डे चुरा जाती है।"

फुलीबाईः "चोरी करने को मैं पाप समझती हूँ।"

तब गाँव का मुखिया बोलाः "हम न्याय कैसे दें कि कण्डे किसके हैं? कण्डों पर नाम तो किसी का नहीं लिखा और आकार भी एक जैसा है। अब कैसे बतायें कि कौन से कण्डे फुलीबाई के हैं एवं कौन से उसकी पड़ोसन के?"

जो स्त्री चोरी करती थी, उसका पति कमाता था फिर भी मलिन मन के कारण वह चोरी करती थी। ऐसी बात नहीं कि कोई गरीबी के कारण ही चोरी करता है। कई बार तो समझ गरीब होती है तब भी लोग चोरी

करते हैं। फिर कोई कलम से चोरी करता है, कोई रिश्वत के रूप में चोरी करता है, कोई नेता बनकर जनता से चोरी करता है। समझ जब कमजोर होती है तभी मनुष्य हराम के पैसे लेकर विलासी जीवन जीने की इच्छा करता है और समझ ऊँची होती है तो मनुष्य ईमानदारी की कमाई से पवित्र जीवन जीता है। फिर भी वह भले सादा जीवन जिये लेकिन उसके विचार बहुत ऊँचे होते हैं।

फुलीबाई का जीवन खूब सादगीपूर्ण था लेकिन उनकी भक्ति एवं समझ बहुत बढ़ गयी थी। उन्होंने कहाः "यह स्त्री मेरे कण्डे चुराती है इसका प्रमाण यह है कि यदि आप मेरे कण्डों को अपने कानों के पास रखेंगे तो उनमें से राम नाम की ध्वनि निकलेगी। जिन कण्डों में राम-नाम की ध्वनि निकले उन्हें आप मेरे समझना और जिनमें से न निकले उन्हें इसके समझना।"

ग्राम-पंचायत के कुछ सज्जन लोग एवं मुखिया उस महिला के यहाँ गये। उसके कण्डों के ढेर में से एक-एक कण्डा उठाकर कान के पास रखकर देखने लगे। जिस कण्डे में से राम नाम की ध्वनि का अनुभव होता तो उसे अलग रख देते। स लगभग 50 कण्डे निकले।

मंत्रजप करते-करते फुलीबाई की रगों में नस-नाड़ियों में एवं पूरे शरीर में मंत्र का प्रभाव छा गया था। वे जिन वस्तुओं को छूतीं, उनमें भी मंत्र की सूक्ष्म तरंगों का संचार हो जाता था। गाँव के मुखिया एवं उन सज्जनों को फुलीबाई का यह चमत्कार देखकर उनके प्रति आदर भाव हो आया। उन लोगों ने फुलीबाई का सत्कार किया।

मनुष्य में कितनी शक्ति है ! कितना सामर्थ्य है ! उसे यदि योग्य मार्गदर्शन मिल जाये एवं वह तत्परता से लग जाये तो क्या नहीं कर सकता?

फुलीबाई ने गुरुमंत्र प्राप्त करके गुरु के निर्देशानुसार साधना की तो उनमें इतनी शक्ति आ गयी कि उनके द्वारा बनाये गये कण्डों से भी राम नाम की ध्वनि निकलने लगी।

एक दिन राजा यशवंतसिंह के सैनिकों की एक टुकड़ी दौड़ने के लिए निकली। उसमें से एक सैनिक फुलीबाई की झोपड़ी में पहुँचा एवं उनसे पानी माँगा।

फुलीबाई ने कहाः "बेटा ! दौड़कर तुरंत पानी नहीं पीना चाहिए। इससे तंदरुस्ती बिगड़ती है एवं आगे जाकर खूब हानि होती। दौड़ लगाकर आये हो तो थोड़ी देर बैठो। मैं तुम्हें रोटी का टुकड़ा देती हूँ, उसे खाकर फिर पानी पीना।"

सैनिकः "माताजी ! हमारी पूरी टुकड़ी दौड़ती आ रही है। यदि मैं खाऊँगा तो मुझे मेरे साथियों को भी खिलाना पड़ेगा।"

फुलीबाईः "मैंने दो रोटले बनाये हैं गुवारफली की सब्जी है। तुम सब लोग टुकड़ा-टुकड़ा खा लेना।"

सैनिकः "पूरी टुकड़ी केवल दो रोटले में से टुकड़ा-टुकड़ा कैसे खा पायेगी?"

फुलीबाईः "तुम चिंता मत करो। मेरे राम मेरे साथ हैं।"

फुलीबाई ने दो रोटले एवं सब्जी को ढँक दिया। कुल्ले करके आँख-कान को पानी का स्पर्श कराया। 'हम जो देखें पवित्र देखें, हम जो सुनें पवित्र सुनें....' ऐसा संकल्प करके आँख-कान को जल का स्पर्श करवाया जाता है।

फुलीबाई ने सब्जी-रोटी को कपड़े से ढँककर भगवत्स्मरण किया एवं इष्टमंत्र में तल्लीन होते-होते टुकड़ी के सैनिकों को रोटले का टुकड़ा एवं सब्जी देती गयीं। फुलीबाई के हाथों से बने उस भोजन में दिव्यता आ गयी थी। उसे खाकर पूरी टुकड़ी बड़ी प्रसन्न एवं संतुष्ट हुई। उन्हें आज तक ऐसा भोजन नहीं मिला था। उन सभी ने फुलीबाई को प्रणाम किया एवं वे विचार करने लगे कि इतने-से झोंपड़े में इतना सारा भोजन कहाँ से आया !

सबसे पहले जो सैनिक पहले जो सैनिक पहुँचा था उसे पता था कि फुलीबाई ने केवल दो रोटले एवं थोड़ी सी सब्जी बनायी है किंतु उन्होंने जिस बर्तन में भोजन रखा है वह बर्तन उनकी भक्ति के प्रभाव से अक्षयपात्र बन गया है।

यह बात राजा यशवंतसिंह के कानों तक पहुँची। वह रथ लेकर फुलीबाई के दर्शन करने के लिए आया। उसने रथ को दूर ही खड़ा रखा, जूते उतारे, मुकुट उतारा एवं एक साधारण नागरिक की तरह फुलीबाई के द्वार तक पहुँचा। फुलीबाई की तो एक छोटी-सी झोंपड़ी है और आज उसमें जोधपुर का सम्राट खूब नम्र भाव से खड़ा है ! भक्ति की क्या महिमा है ! परमात्मज्ञान की क्या महिमा है कि जिसके आगे बड़े-बड़े सम्राट तक नतमस्तक हो जाते हैं !

यशवंतसिंह ने फुलीबाई के चरणों में प्रणाम किया। थोड़ी देर बातचीत की, सत्संग सुना। फुलीबाई ने अपने अनुभव की बातें बड़ी निर्भीकता से राजा यशवंतसिंह को सुनायीं-

"बेटा यशवंत ! तू बाहर का राज्य तो कर रहा है लेकिन अब भीतर का राज्य भी पा ले। तेरे अंदर ही आत्मा है, परमात्मा है। वही असली राज्य है। उसका ज्ञान पाकर तू असली सुख पा ले। कब तक बाहर के विषय-विकारों के सुख में अपने को गरक करता रहेगा? हे यशवंत ! तू यशस्वी हो। अच्छे कार्य कर और उन्हें भी ईश्वरार्पण कर दे। ईश्वरार्पण बुद्धि से किया गया कार्य भक्ति हो जाता है। राग-द्वेष से प्रेरित कर्म जीव को बंधन में डालता है किंतु तटस्थ होकर किया गया कर्म जीव को मुक्ति के पथ पर ले जाता है।

हे यशवंत ! तेरे खजाने में जो धन है वह तेरा नहीं है, वह तो प्रजा के पसीने की कमाई है। उस धन को जो राजा अपने विषय-विलास में खर्च कर देता है, उसे रौरव नरक के दुःख भोगने पड़ते हैं, कुंभीपाक जैसे नरकों में जाना पड़ता है। जो राजा प्रजा के धन का उपयोग प्रजा के हित में, प्रजा के स्वास्थ्य के लिए, प्रजा के विकास के लिए करता है वह राजा यहाँ भी यश पाता है और उसे स्वर्ग की भी प्राप्ति होती है। हे यशवंत ! यदि वह राजा भगवान की भक्ति करे, संतों का संग करे तो भगवान के लोक को भी पा लेता है और यदि वह भगवान के लोक को पाने की भी इच्छा न करे वरन् भगवान को ही जानने की इच्छा करे तो वह भगवत्स्वरूप का ज्ञान पाकर भगवत्स्वरूप, ब्रह्मस्वरूप हो जाता है।"

फुलीबाई की अनुभवयुक्त वाणी सुनकर यशवंतसिंह पुलकित हो उठा। उसने अत्यंत श्रद्धा-भक्ति से फुलीबाई के चरणों में प्रणाम किया। फुलीबाई की वाणी में सच्चाई थी, सहजता थी और ब्रह्मज्ञान का तेज था, जिसे सुनकर यशवंतसिंह भी नतमस्तक हो गया।

कहाँ तो जोधपुर का सम्राट और कहाँ लौकिक दृष्टि से अनपढ़ फुलीबाई ! किंतु उन्होंने यशवंतसिंह को ज्ञान दिया। यह ब्रह्मज्ञान है ही ऐसा कि जिसके सामने लौकिक विद्या का कोई मूल्य नहीं होता।

यशवंतसिंह का हृदय पिघल गया। वह विचार करने लगा कि 'फुलीबाई के पास खाने के लिए विशेष भोजन नहीं है, रहने के लिए अच्छा मकान नहीं है, विषय-भोग की कोई सामग्री नहीं है फिर भी वे संतुष्ट रहती है और मेरे जैसे राजा को भी उनके पास आकर शांति मिलती है। सचमुच, वास्तविक सुख तो भगवान की भक्ति में एवं भगवत्प्राप्त महापुरुषों के श्रीचरणों में ही है, बाकी को संसार में जल-जलकर मरना ही है। वस्तुओं को भोग-भोगकर मनुष्य जल्दी कमजोर एवं बीमार हो जाता है, जबकि फुलीबाई कितनी मजबूत दिख रही हैं !'

यह सोचते-सोचते यशवंतसिंह के मन में एक पवित्र विचार आया कि 'मेरे रनिवास में तो कई रानियाँ रहती हैं परंतु जब देखो तब बीमार रहती हैं, झगड़ती रहती हैं, एक दूसरे की चुगली और एक-दूसरे से ईर्ष्या करती रहती हैं। यदि उन्हें फुलीबाई जैसी महान आत्मा का संग मिले तो उनका भी कल्याण हो।'

यशवंतसिंह ने हाथ जोड़कर फुलीबाई से कहाः

"माताजी ! मुझे एक भिक्षा दीजिए।"

सम्राट एक निर्धन के पास भीख माँगता है ! सच्चा सम्राट तो वही है जिसने आत्मराज्य पा लिया है। बाह्य साम्राज्य को प्राप्त किया हुआ मनुष्य तो अध्यात्ममार्ग की दृष्टि से कंगाल भी हो सकता है। आत्मराज्य को पायी हुई निर्धन फुलीबाई से राजा एक भिखारी की तरह भीख माँग रहा है।

यशवंतसिंह बोलाः "माता जी ! मुझे एक भिक्षा दें।"

फुलीबाईः "राजन ! तुम्हें क्या चाहिए?"

यशवंतसिंहः "बस, माँ ! मुझे भक्ति की भिक्षा चाहिए। मेरी बुद्धि सन्मार्ग में लगी रहे एवं संतों का संग मिलता रहे।"

फुलीबाई ने उस बुद्धिमान, पवित्रात्मा यशवंतसिंह के सिर पर हाथ रखा। फुलीबाई का स्पर्श पाकर राजा गदगद हो गया एवं प्रार्थना करने लगाः "माँ ! इस बालक की एक दूसरी इच्छा भी पूरी करें। आप मेरे रनिवास में पधारकर मेरी रानियों को थोड़ा उपदेश देने की कृपा करें, ताकि उनकी बुद्धि भी अध्यात्म में लग जाय।"

फुलीबाई ने यशवंतसिंह की विनम्रता देखकर उनकी प्रार्थना स्वीकार कर ली। नहीं तो, उन्हें रनिवास से क्या काम?

ये वे ही फुलीबाई हैं जिनके पति विवाह होते ही स्वर्ग सिधार गये थे। दूसरी कोई स्त्री होती तो रोती कि 'अब मेरा क्या होगा? मैं तो विधवा हो गयी...' परंतु फुलीबाई के माता-पिता ने उन्हें भगवान के रास्ते लगा दिया। गुरु से दीक्षा लेकर गुरु के बताये हुए मार्ग पर चलकर अब फुलीबाई 'फुलीबाई' न रहीं बल्कि 'संत फुलीबाई' हो गयीं तो यशवंतसिंह जैसा सम्राट भी उनका आदर करता है एवं उनकी चरणरज सिर पर लगाकर अपने को भाग्यशाली मानता है, 'उन्हें माता' कहकर संबोधित करता है। जो कण्डे बेचकर अपना जीवन निर्वाह करती हैं उन्हें हजारों लोग 'माता' कहकर पुकारते हैं।

धन्य है वह धरती जहाँ ऐसे भगवदभक्त जन्म लेते हैं ! जो भगवान का भजन करके भगवान के हो जाते हैं। उन्हें 'माता' कहने वाले हजारों लोग मिल जाते हैं, अपना मित्र एवं सम्बन्धी मानने के लिए हजारों लोग तैयार हो जाते हैं क्योंकि उन्होंने सच्चे माता-पिता के साथ, सच्चे सगे-सम्बन्धी के साथ, परमात्मा के साथ अपना चित्त जोड़ लिया है।

यशवंतसिंह ने फुलीबाई को राजमहल में बुलवाकर दासियों से कहाः "इन्हें खूब आदर के साथ रनिवास में जाओ ताकि रानियाँ इनके दो वचन सुनकर अपने कान को एवं दर्शन करके अपने नेत्रों को पवित्र करें।"

फुलीबाई के वस्त्रों पर तो कई पैबंद लगे हुए थे। पैबंदवाले कपड़े पहनने के बावजूद, बाजरी के मोटे रोटले खाने एवं झोंपड़े में रहने के बावजूद फुलीबाई कितनी तंदरुस्त और प्रसन्न थी और यशवंत सिंह की रानियाँ ? प्रतिदिन नये-नये व्यंजन खाती थीं, नये-नये वस्त्र पहनती थीं, महलों में रहती थीं फिर भी लड़ती-झगड़ती रहती थीं। उनमें थोड़ी आये इसी आशा से राजा ने फुलीबाई को रनिवास में भेजा।

दासियाँ फुलीबाई को आदर के साथ रनिवास में ले गयीं। वहाँ तो रानियाँ सज-धजकर, हार-श्रृंगार करके, तैयार होकर बैठी थी। जब उन्होंने पैबंद लगे मोटे वस्त्र पहनी हुई फुलीबाई को देखा तो एक दूसरे की तरफ देखने लगीं और फुसफुसाने लगीं कि यह कौन सा प्राणी आया है?"

फुलीबाई का अनादर हुआ किंतु फुलीबाई के चित्त पर चोट न लगी क्योंकि जिसने अपना आदर कर लिया, अपनी आत्मा का आदर कर लिया, उसका अनादर करके उसको चोट पहुँचाने में दुनिया का कोई भी व्यक्ति सफल नहीं हो सकता। फुलीबाई को दुःख न हुआ, ग्लानि न हुई, क्रोध नहीं आया वरन् उनके चित्त मे दया उपजी कि इन मूर्ख रानियों को थोड़ा उपदेश देना चाहिए। दयालु एवं समचित्त फुलीबाई ने उन रानियों कहाः "बेटा ! बैठो।"

दासियों ने धीरे-से जाकर रानियों को बताया कि राजा साहब तो इन्हें प्रणाम करते हैं, इनका आदर करते हैं और आप लोग कहती हैं कि "कौन सा प्राणी आया?" राजा साहब को पता चलेगा तो आपकी...."

यह सुनकर रानियाँ घबरायीं एवं चुपचाप बैठ गयीं।

फुलीबाई ने कहाः "हे रानियो ! इस हाड़-मांस के शरीर को सजाकर क्या बैठी हो? गहने पहनकर, हार-श्रृंगार करके केवल शरीर को ही सजाती रहोगी तो उससे तो पति के मन में विकार उठेगा। जो तुम्हें देखेगा उसके मन में विकार उठेगा। इससे उसे तो नुकसान होगा ही, तुम्हें भी नुकसान होगा।"

शास्त्रों में श्रृंगार करने की मनाही नहीं है परंतु सात्त्विक पवित्र एवं मर्यादित श्रृंगार करो। जैसा श्रृंगार प्राचीन काल में होता था, वैसा करो। पहले वनस्पतियों से श्रृंगार के ऐसे साधन बनाये जाते थे जिनसे मन प्रफुल्लित एवं पवित्र रहता था, तन नीरोग रहता था। जैसे कि पैर में पायल पहनने से अमुक नाड़ी पर दबाव रहता है एवं उससे ब्रह्मचर्य-रक्षा में मदद मिलती है। जैसे ब्राह्मण लोग जनेऊ पहनते हैं एवं पेशाब करते समय कान पर जनेऊ लपेटते हैं तो उस नाड़ी पर दबाव पड़ने से उन्हें 'कर्ण पीडनासन' का लाभ मिलता है और स्वप्नदोष की बीमारी नहीं होती। इस प्रकार शरीर को मजबूत और मन को प्रसन्न बनाने में सहायक ऐसी हमारी वैदिक संस्कृति है।

आजकल तो पाश्चात्य जगत के ऐसे गंदे श्रृंगारो का प्रचार बढ गया है कि शरीर तो रोगी हो जाता है, साथ ही मन भी विकारग्रस्त हो जाता है। श्रृंगार करने वाली जिस दिन श्रृंगार नहीं करती उस दिन उसका चेहरा बूढी बंदरी जैसा दिखता है। चेहरे की कुदरती कोमलता नष्ट हो जाती है। पाउडर, लिपस्टिक वगैरह से त्वचा की प्राकृतिक स्निग्धता नष्ट हो जाती है।

प्राकृतिक सौन्दर्य को नष्ट करके जो कृत्रिम सौन्दर्य के गुलाम बनते हैं, उनसे प्रार्थना है कि वे कृत्रिम प्रसाधनों का प्रयोग करके अपने प्राकृतिक सौन्दर्य को नष्ट न करें। चूड़ियाँ पहनने की, कुमकुम का तिलक करने की मनाई नहीं है, परंतु पफ-पाउडर, लाली लिपस्टिक लगाकर, चमकीले-भड़कीले वस्त्र पहनकर अपने शरीर, मन, कुटुम्बियों एवं समाज का अहित न हो, ऐसी कृपा करें। अपने असली सौन्दर्य को प्रकट करें। जैसे मीरा ने किया था, गार्गी और मदालसा ने किया था।

फुलीबाई ने उन रानियों को कहाः "हे रानियो ! तुम इधर-उधर क्या देखती हो? ये गहने-गाँठें तो तुम्हारे शरीर की शोभा हैं और यह शरीर एक दिन मिट्टी में मिल जाने वाला है। इसे सजा-धजाकर कब तक अपने जीवन को नष्ट करती रहेगी? विषय विकारों में कब तक खपती रहोगी? अब तो श्रीराम का भजन कर लो। अपने वास्तविक सौन्दर्य को प्रकट कर लो।

गहनो गाँठो तन री शोभो, काया काचो भाँडो।
'फुली' कहे थे राम भजो नित, लड़ो क्यों हो राँडो?

'गहने-गाँठे शरीर की शोभा हैं और शरीर मिट्टी के कच्चे बर्तन जैसा है। अतः प्रतिदिन राम का भजन करो। इस तरह व्यर्थ लड़ने से क्या लाभ?'

विषय-विकार की गुलामी छोड़ो, हार श्रृंगार की गुलामी छोड़ो एवं पा लो उस परमेश्वर को, जो परम सुन्दर है।"

राजा यशवंतसिंह के रनिवास में भी फुलीबाई की कितनी हिम्मत है ! रानियों को सत्य सुनाकर फुलीबाई अपने गाँव की तरफ चल पड़ीं।

बाहर से भले कोई अनपढ़ दिखे, निर्धन दिखे परंतु जिसने अंदर का राज्य पा लिया है वह धनवानों को भी दान देने की क्षमता रखता है और विद्वानों को भी अध्यात्म-विद्या प्रदान कर सकता है। उसके थोड़े-से आशीर्वाद मात्र से धनवानों के धन की रक्षा हो जाती है, विद्वानों में आध्यात्मिक विद्या प्रकट होने लगती है। आत्मविद्या में, आत्मज्ञान में ऐसा अनुपम-अदभुत सामर्थ्य है और इसी सामर्थ्य से संपन्न थीं फुलीबाई।

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

अनुक्रम

आनंदीबाई की दृढ़ श्रद्धा

एक पंजाबी महिला का नाम था आनंदीबाई। देखने में तो वह इतनी कुरूप थी कि देखकर लोग डर जायें। उसका विवाह हो गया। विवाह से पूर्व उसके पति ने उसे नहीं देखा था। विवाह के पश्चात् उसकी कुरूपता को देखकर वह उसे पत्नी के रूप में न रख सका एवं उसे छोड़कर उसने दूसरा विवाह रचा लिया।

आनंदी ने अपनी कुरूपता के कारण हुए अपमान को पचा लिया एवं निश्चय किया कि 'अब तो मैं गोकुल को ही अपनी ससुराल बनाऊँगी।' वह गोकुल में एक छोटे से कमरे में रहने लगी। घर में ही मंदिर बनाकर

आनंदीबाई श्रीकृष्ण की मस्ती में मस्त रहने लगी। आनंदीबाई सुबह-शाम घर में विराजमान श्रीकृष्ण की मूर्ति के साथ बातें करती... उनसे रूठ जाती... फिर उन्हें मनाती.... और दिन में साधु-सन्तों की सेवा एवं सत्संग-श्रवण करती। इस प्रकार उसके दिन बीतने लगे।

एक दिन की बात हैः

गोकुल में गोपेश्वरनाथ नामक जगह पर श्रीकृष्ण-लीला का आयोजन निश्चित किया गया था। उसके लिए अलग-अलग पात्रों का चयन होने लगा। पात्रों के चयन के समय आनंदीबाई भी वहाँ विद्यमान थी। अंत में कुब्जा के पात्र की बात चली। उस वक्त आनंदी का पति अपनी दूसरी पत्नी एवं बच्चों के साथ वहीं उपस्थित था। अतः आनंदीबाई की खिल्ली उड़ाते हुए उसने आयोजकों के आगे प्रस्ताव रखाः

"सामने यह जो महिला खड़ी है वह कुब्जा की भूमिका अच्छी तरह से अदा कर सकती है, अतः उसे ही कहो न ! यह पात्र तो इसी पर जँचेगा। यह तो साक्षात कुब्जा ही है।"

आयोजकों ने आनंदीबाई की ओर देखा। उसका कुरूप चेहरा उन्हें भी कुब्जा की भूमिका के लिए पसंद आ गया। उन्होंने आनंदीबाई को कुब्जा का पात्र अदा करने के लिए प्रार्थना की।

श्रीकृष्णलीला में खुद को भाग लेने का मौका मिलेगा, इस सूचनामात्र से आनंदीबाई भावविभोर हो उठी। उसने खूब प्रेम से भूमिका अदा करने की स्वीकृति दे दी। श्रीकृष्ण का पात्र एक आठ वर्षीय बालक के जिम्मे आया था।

आनंदीबाई तो घर आकर श्रीकृष्ण की मूर्ति के आगे विह्वलता से निहारने लगी एवं मन-ही-मन विचारने लगी कि 'मेरा कन्हैया आयेगा... मेरे पैर पर पैर रखेगा.... मेरी ठोड़ी पकड़कर मुझे ऊपर देखने को कहेगा....' वह तो बस, नाटक में दृश्यों की कल्पना में ही खोने लगी।

आखिरकार श्रीकृष्णलीला रंगमंच पर अभिनीत करने का समय आ गया। लीला देखने के लिए बहुत से लोग एकत्रित हुए। श्रीकृष्ण के मथुरागमन का प्रसंग चल रहा थाः

नगर के राजमार्ग से श्रीकृष्ण गुजर रहे हैं... रास्ते में उन्हे कुब्जा मिली....

आठ वर्षीय बालक जो श्रीकृष्ण का पात्र अदा कर रहा था **उसने कुब्जा बनी हुई आनंदी के पैर पर पैर रखा और उसकी ठोड़ी पकड़कर उसे ऊँचा किया। किंतु यह कैसा चमत्कार ! कुरूप कुब्जा एकदम सामान्य नारी के स्वरूप में आ गयी !! वहाँ उपस्थित सभी दर्शकों ने इस प्रसंग को अपनी आँखों से देखा।** आनंदीबाई की कुरूपता का पता सभी को था। अब उसकी कुरूपता बिल्कुल गायब हो चुकी थी। यह देखकर सभी दाँतो तले ऊँगली दबाने लगे!!

आनंदीबाई तो भावविभोर होकर अपने कृष्ण में ही खोयी हुई थी... उसकी कुरूपता नष्ट हो गयी यह जानकर कई लोग कुतुहलवश उसे देखने के लिए आये।

फिर तो आनंदीबाई अपने घर में बनाये गये मंदिर में विराजमान श्रीकृष्ण में ही खोयी रहतीं। यदि कोई कुछ भी पूछता तो एक ही जवाब मिलताः "मेरे कन्हैया की लीला कन्हैया ही जाने...."

आनंदीबाई ने अपने पति को धन्यवाद देने में भी कोई कसर बाकी न रखी। यदि उसकी कुरूपता के कारण उसके पति ने उसे छोड़ न दिया होता तो श्रीकृष्ण में उसकी इतनी भक्ति कैसे जागती? श्रीकृष्णलीला में

कुब्जा के पात्र के चयन के लिए उसका नाम भी तो उसके पति ने ही दिया था, इसका भी वह बड़ा आभार मानती थी।

प्रतिकूल परिस्थितियों एवं संयोगों में शिकायत करने की जगह प्रत्येक परिस्थिति को भगवान की ही देन मानकर धन्यवाद देने से प्रतिकूल परिस्थिति भी उन्नतिकारक हो जाती है, पत्थर भी सोपान बन जाता है।

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

अनुक्रम

कर्माबाई की वात्सल्य-भक्ति

सर्वान्तर्यामी, घट-घटवासी भगवान न तो धन-ऐश्वर्य से प्रसन्न होते हैं और न ही पूजा के लम्बे-चौड़े विधानों से। वे तो बस, एकमात्र प्रेम से ही संतुष्ट होते हैं एवं प्रेम के वशीभूत होकर नेम (नियम) की भी परवाह नहीं करते। कोई उनका होकर उन्हें पुकारे तो दौड़े चले आते हैं।

कर्माबाई नामक एक ऐसी ही भक्तिमती नारी थीं, जिनकी पुकार सुनकर भगवान प्रतिदिन उनकी खिचड़ी खाने दौड़े चले आते थे। भगवान यह नहीं देखते की भक्त ने खीर-पूरी-पकवान तैयार किये हैं या एकदम सीधा-सादा, रूखा-सूखा भोजन।

कर्माबाई श्रीपुरुषोत्तमपुरी (जगन्नाथपुरी) में निवास करती थीं। वे भगवान का वात्सल्य-भाव से चिन्तन करती थीं एवं प्रतिदिन नियमपूर्वक प्रातःकाल स्नानादि किये बिना ही खिचड़ी तैयार करतीं और भगवान को अर्पित करती थीं। प्रेम के वश में रहने वाले श्रीजगन्नाथजी भी प्रतिदिन सुन्दर-सलोने बालक के वेश में आते और कर्माबाई की गोद में बैठकर खिचड़ी खा जाते। कर्माबाई भी सदैव चिन्तित रहा करतीं कि बालक के भोजन में कभी विलंब न हो जाये। इसी कारण वे किसी भई विधि-विधान के पचड़े में न पड़कर अत्यंत प्रेम से सवेरे ही खिचड़ी तैयार कर लेती थीं।

एक दिन की बात है। कर्माबाई के पास एक साधु आये। उन्होंने कर्माबाई को अपवित्रता के साथ खिचड़ी तैयार करके भगवान को अर्पण करते हुए देखा। घबराकर उन्होंने कर्माबाई को पवित्रता से भोजन बनाने के लिए कहा और पवित्रता के लिए स्नानादि की विधियाँ बता दीं।

भक्तिमती कर्माबाई ने दूसरे दिन वैसा ही किया किंतु खिचड़ी तैयार करने में उन्हें देर हो गयी। उस समय उनका हृदय यह सोचकर रो उठा कि 'मेरा प्यारा श्यामसुन्दर भूख से छटपटा रहा होगा।'

कर्माबाई ने दुःखी मन से श्यामसुन्दर को खिचड़ी खिलायी। उसी समय मंदिर में अनेकानेक घृतमय निवेदित करने के लिए पुजारी ने प्रभु का आवाहन किया। प्रभु जूठे मुँह ही वहाँ चल गये। पुजारी चकित हो गया। उसने देखा कि भगवान के मुखारविंद में खिचड़ी लगी है ! पुजारी भी भक्त था। उसका हृदय क्रन्दन करने लगा। उसने अत्यंत कातर होकर प्रभु को असली बात बताने की प्रार्थना की।

तब उसे उत्तर मिलाः "नित्यप्रति प्रातःकाल मैं कर्माबाई के पास खिचड़ी खाने जाता हूँ। उनकी खिचड़ी मुझे बड़ी प्रिय और मधुर लगती है। पर कल एक साधु ने जाकर उन्हें पवित्रता के लिए स्नानादि की विधियाँ बता दीं, इसलिए विलंब के कारण मुझे क्षुधा का कष्ट तो हुआ ही, साथ ही शीघ्रता से जूठे मुँह ही आना पड़ा।"

भगवान के बताये अनुसार पुजारी ने उस साधु को ढूँढकर प्रभु की सारी बातें सुना दीं। साधु चकित हो उठा एवं घबराकर कर्माबाई के पास जाकर बोलाः "आप पूर्व की तरह ही प्रतिदिन सवेरे ही खिचड़ी बनाकर प्रभु को निवेदन कर दिया करें। आपके लिए किसी नियम की आवश्यकता नहीं है।"

कर्माबाई पुनः पहले की ही तरह प्रतिदिन सवेरे भगवान को खिचड़ी खिलाने लगीं। वे समय पाकर परमात्मा के पवित्र और आनंदधाम में चली गयीं, परंतु उनके प्रेम की गाथा आज भी विद्यमान है। श्रीजगन्नाथजी के मंदिर में आज भी प्रतिदिन प्रातःकाल खिचड़ी का भोग लगाया जाता।

प्रेम में अदभुत शक्ति है। जो काम दल-बल-छल से नहीं हो सकता, वह प्रेम से संभव है। प्रेम प्रेमास्पद को भी अपने वशीभूत कर देता है किंतु शर्त इतनी है कि प्रेम केवल प्रेम के लिए ही किया जाय, किसी स्वार्थ के लिए नहीं। भगवान के होकर भगवान से प्रेम करो तो उनके मिलने में जरा भी देर नहीं है।

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

अनुक्रम

साध्वी सिरमा

सिंहल देश (वर्तमान श्रीलंका) के एक सदाचारी परिवार में जन्मी हुई कन्या सिरमा में बाल्यकाल से ही भगवदभक्ति प्रस्फुटित हो चुकी थी। वह जितनी सुन्दर थी, उतनी ही सुशील भी थी। 16 वर्ष की उम्र में उसके माँ-बाप ने एक धनवान परिवार के युवक सुमंगल के साथ उसकी शादी करवा दी।

शादी के पश्चात् सुमंगल विदेश चला गया। वहाँ वह वस्तुओं का आयात-निर्यात करता था। कुछ वर्षों में उसने काफी संपत्ति इकट्ठी कर ली और स्वदेश लौट चला। कुटुंबियों ने सोचा कि सुमंगल वर्षों बाद घर लौट रहा है, अतः उसका आदर-सत्कार होना चाहिए गाँव भर के जाने माने लोगों को आमंत्रित किया गया और सब सुमंगल को लेने चले। भीड़ में उस जमाने की गणिका मंदारमाला भी थी।

मंदारमाला के सौन्दर्य को देखकर सुमंगल मोहित हो गया एवं सुमंगल के आकर्षक व्यक्तित्व से मंदारमाला भी घायल हो गयी। भीड़ को समझते देर न लगी कि दोनों एक-दूसरे से घायल हो गयी। सुमंगल को लेकर शोभायात्रा उसके घर पहुँची। सुमंगल को उदास देखकर बोलीः

"देव ! आप बड़े उदास एवं व्यथित लग रहे हैं। आपकी उदासी एवं व्यथा का कारण मैं जानती हूँ।"

सुमंगलः "जब जानती है तो क्या पूछती है? अब उसके बिना नहीं रहा जाता।"

यह सुनकर सिरमा ने अपना संतुलन न खोया क्योंकि वह प्रतिदिन भगवान का ध्यान करती थी एवं शांत स्वभाव का धन, विवेक-वैराग्यरूपी धन और विपत्तियों में भी प्रसन्न रहने की समझ का धन उसके पास था।

सुविधाएँ हो और आप प्रसन्न रहें- इतना तो लालिया, मोतिया और कालिया कुत्ता भी जानता है। वह भी जलेबी देखकर पूँछ हिला देता है और डंडा देखकर पूंछ दबा देता है। सुख में सुखी एवं दुःख में दुःखी नहीं होता लेकिन सर्वोत्तम तो वह है जो सुख-दुःख को सपना मानता है एवं सच्चिदानंद परमात्मा को अपना मानता है।

सिरमा ने कहाः "नाथ ! आपकी परेशानी का कारण तो मैं जानती हूँ, उसे दूर करने में मैं पूरा सहयोग दूँगी। आप अपनी परेशानियों को मिटाने में मेरे पूरे अधिकार का उपयोग कर सकते हैं। कोई उपाय खोजा जायेगा।"

इतने में ही मंदारमाला की नौकरानी आकर बोलीः

"सुमंगल ! आपको मेरी मालकिन अपने महल में बुला रही हैं।"

सिरमा ने कहाः "जाकर अपनी मालकिन से कह दो कि इस बड़े घर की बहूरानी बनना चाहती हो तो तुम्हारे लिए द्वार खुले हैं। सिरमा अपने सारे अधिकार तुम्हें सौंपने को तैयार है लेकिन इस बड़े खानदान के लड़के को अपने अड्डे पर बुलाकर कलंक का टीका मत लगाओ। यह मेरी प्रार्थना है।"

सिरमा की नम्रता ने मंदारमाला के हृदय को द्रवित कर दिया और वह वस्त्रालंकार से सुसज्जित होकर सुमंगल के घर आ गयी। सिरमा ने दोनों का गंधर्व विवाह करवा दिया और किसी सच्चे संत से दीक्षा लेकर स्वयं साध्वी बन गयी। सिरमा की समझ व मंत्रजाप की तत्परता ने उसे ऋद्धि-सिद्धि की मालकिन बना दिया। सिरमा का मनोबल, बुद्धिबल, तपोबल और यौगिक सामर्थ्य इतना निखरा कि कई साधक सिरमा को प्रणाम करने आने लगे।

एक दिन एक साधक, जिसका सिर फूटा हुआ था और खून बह रहा था, सिरमा के पास आया। सिरमा ने पूछाः "भिक्षुक ! तुम्हारा सिर फूटा है.... क्या बात है?"

भिक्षुकः "मैं भिक्षा लेने के लिए सुमंगल के घर गया था। मंदारमाला के हाथ में जो बर्तन था वही बर्तन उन्होंने मेरे सिर पर दे मारा। इससे मेरा सिर फूट गया।"

सिरमा को बड़ा दुःख हुआ कि मंदारमाला को पूरी जायदाद मिल गयी और मेरा ऐसा सुन्दर, धनी , पवित्र स्वभाववाला व्यापारी पति मिल गया, फिर वह क्यों दुःखी है? संसार में जब तक सच्ची समझ, सच्चा ज्ञान नहीं मिलता, तब तक मनुष्य के दुःखों का अंत नहीं होता। शायद वह दुःखी होगी।.... और दुःखी व्यक्ति ही साधुओं को दुःख देगा। सज्जन व्यक्ति साधुओं को दुःख नहीं देगा वरन् उनसे सुख लेगा, आशीर्वाद ले लेगा। मंदारमाला अति दुःखी है, तभी उसने भिक्षुक को भी दुःखी कर दिया।

सिरमा गयी मंदारमाला के पास और बोलीः "मंदारमाला ! उस भिक्षुक के, अकिंचन साधु के भिक्षा माँगने पर तू भिक्षा नहीं देती तो चलता, लेकिन उसका सिर क्यों फोड़ दिया?"

मंदारमालाः बहन ! मैं बहुत दुःखी हूँ। सुमंगल ने तुझे छोड़कर मुझसे शादी की और अब मेरे होते हुए एक दूसरी नर्तकी के यहाँ जाता है। वह मुझसे कहता है कि मैं परसों उसके साथ शादी कर लूँगा। मैंने तो अपने

सुख को सँभाल रखा था लेकिन सुख तो सदा टिकता नहीं है। तुम्हारा दिया हुआ यह खिलौना अब दूसरा खिलौना लेने का भाग रहा है।"

सिरमा को दुःखाकार वृत्ति का थोड़ा धक्का लगा, किंतु वह सावधान थी। रात्रि को वह अपने कक्ष में दीया जलाकर बैठ गयी एवं प्रार्थना करने लगीः 'हे भगवान ! तुम प्रकाशस्वरूप हो, ज्ञानस्वरूप हो। मैं तुम्हारी शरण आयी हूँ। तुम अगर चाहो तो सुमंगल को वास्तव में सुमंगल बना सकते हो। सुमंगल, जिससे जल्दी मृत्यु हो जाये ऐसे भोग-पर-भोग बढ़ा रहा है एपं नरक की यात्रा कर रहा है। उसे सत्प्रेरणा देकर, इन विकारों से बचाकर, अपने निर्विकारी, शांत, आनंद एवं माधुर्यस्वरूप में लगाने में हे प्रभु ! तुम सक्षम हो...'

सिरमा प्रार्थना किये जा रही है एवं टकटकी लगाकर दीये की लौ को देखे जा रही है। ध्यान करते-करते सिरमा शांत हो गयी। उसकी शांति ही परमात्मा तक पैगाम पहुँचाने का साधन बन गयी। ध्यान करते-करते उसे कब नींद आ गयी, पता नहीं। लेकिन जो नींद के समय भी तुम्हारे चित्त की चेतना को, रक्तवाहिनियों को सत्ता देता है, वह प्यारा कैसे चुप बैठता ?

प्रभात में सुमंगल को भयानक स्वप्न आया कि 'मेरा विकारी-भोगी जीवन मुझे घसीटकर यमराज के पास ले गये एवं तमाम भोगियों की जो दुर्दशा हो रही है, वही मेरी भी होने जा रही है। हाय ! मैं यह क्या देख रहा हूँ?' सुमंगल चौंक उठा और उसकी आँख खुल गयी। प्रभात का स्वप्न सत्य का संकेत देने वाला होता है।

सुबह होते-होते सुमंगल ने अपनी सारी धन-सम्पत्ति गरीब-गुरबों में बाँटकर एवं सत्कर्मों में लगाकर दीक्षा ले ली। अब तो सिरमा जिस रास्ते जा रही है, भोग के कीचड़ में पड़ा हुआ सुमंगल भी उसी रास्ते अर्थात् आत्मोद्धार के रास्ते जाने का संकल्प करके चल पड़ा।

वह अंतःचेतना कब, किस व्यक्ति के अंतःकरण में जाग्रत हो और वह भोग के दलदल से तथा अहंकार के विकट मार्ग से बचकर सहज स्वभाव को अपनाकर सरल मार्ग से सत्-चित्-आनंदस्वरूप ईश्वर की ओर चल पड़े, कहना मुश्किल है।

धन्य है सिरमा, जो स्वयं तो उस पथ पर चली ही, साथ ही अपने विकारी पति को भी उस पथ पर चलाने में सहायक हो गयी !

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

अनुक्रम

भक्तिमती जनाबाई

(भगवदभक्ति से क्या संभव नहीं है? सब संभव है। भक्तिमती जनाबाई के जीवन प्रसंगो पर प्रकाश डालते हुए पूज्यश्री कहते हैं)

भगवान कब, कहाँ और कैसे अपनी लीला प्रकट करके भक्तों की रक्षा करते हैं, यह कहना मुश्किल है ! भक्तों का इतिहास देखते हैं, उनका चरित्र पढ़ते हैं तब भगवान के अस्तित्व पर विशेष श्रद्धा हो जाती है।

गोदावरी नदी के तट पर स्थित गंगाखेड़ (जि. परमणी, महाराष्ट्र) गाँव में दमाजी के यहाँ जनाबाई का जन्म हुआ था। जनाबाई के बचपन उसकी माँ चल बसी। माँ का अग्निसंस्कार करके जब पिता घर आये तब नन्हीं-सी जना ने पूछाः

"पिताजी ! माँ कहाँ गयी?"

पिताः "माँ पंढरपुर में भगवान विट्ठल के पास गयी है।"

एक दिन, दो दिन... पाँच दिन... दस दिन... पच्चीस दिन बीत गये। "माँ अभी तक नहीं आयी? पंढरपुर में विट्ठल के पास बैठी है? पिता जी ! मुझे भी विट्ठल के पास ले चलो।" नन्ही सुकन्या जना ने जिद की।

पिता बेटी को पंढरपुर ले आये। चंद्रभागा नदी में स्नान करके विट्ठल के मंदिर में गये। नन्हीं-सी जना विट्ठल से पूछने लगीः "मेरी माँ कहाँ गयी? विट्ठल ! बुलाओ न, मेरी माँ को।"

'विट्ठल, विट्ठल...' करके जना रोने लगी। पिता ने समझाने की खूब कोशिश की किंतु नन्हीं सी बालिका की क्या समझ में आता? इतने में वहाँ दामा शेठ एवं उनकी धर्मपत्नी गोणाई बाई आये। भक्त नामदेव इन्हीं की सन्तान थे। बालिका को देखकर उनका वात्सल्य जाग उठा। उन्होंने जना के पिता से कहाः

"अब यह पंढरपुर छोड़कर तो जायेगी नहीं। आप इसे यहीं छोड़ जाइये। हम इसे अपनी बेटी के समान रखेंगे। यह यहीं रहकर विट्ठल के दर्शन करेगी और अपनी माँ के लिए विट्ठल के दर्शन करेगी और अपनी माँ के लिए विट्ठल को पुकारते-पुकारते अगर इसे भक्ति का रंग लग जाये तो अच्छा ही है।"

जना के पिता सहमत हो गये एवं जनाबाई को वहीं छोड़ गये। जना को बाल्यकाल से ही भक्त नामदेव का संग मिल गया। जना वहाँ रहकर विट्ठल के दर्शन करती एवं घर के काम-काज में हाथ बँटाती थी। धीरे-धीरे जना की भगवदभक्ति बढ़ गयी।

समय पाकर नामदेव जी का विवाह हो गया। फिर भी जना उनके घर के सब काम करती थी एवं रोज नियम से विट्ठल के दर्शन करने भी जाती थी।

एक बार काम की अधिकता से वह विट्ठल के दर्शन करने देर से जा पायी। रात हो गयी थी, सब लोग जा चुके थे। विट्ठल के दर्शन करके जना घर लौट आयी लेकिन दूसरे दिन सुबह विट्ठल भगवान के गले में जो स्वर्ण की माला थी, वह गायब हो गयी !

मंदिर के पुजारी ने कहाः "सबसे आखिर में जनाबाई आयी थी।"

जनाबाई को पकड़ लिया गया। जना ने कहाः "मैं किसी की सुई भी नहीं लेती तो विट्ठल भगवान का हार कैसे चोरी करूँगी?"

लेकिन भगवान भी मानों, परीक्षा करके अपने भक्त का आत्मबल और यश बढ़ाना चाहते थे। राजा ने फरमान जारी कर दियाः "जना झूठ बोलती है। इसको सरे बाजार से बेंत मारते-मारते ले जाया जाये एवं जहाँ सबको सूली पर चढ़ाया जाता है, वहीं सूली पर चढ़ा दिया जाय।"

सिपाही जनाबाई को लेने आये। जनाबाई अपने विट्ठल को पुकारती जा रही थीः "हे मेरे विट्ठल ! मैं क्या करूँ? तुम तो सब जानते ही हो..."

गहने बनाने से पूर्व स्वर्ण को तपाया जाता है। ऐसे ही भगवान भी भक्त की कसौटी करते ही हैं। जो सच्चे भक्त होते हैं वे उस कसौटी को पार कर जाते हैं, बाकी के लोग भटक जाते हैं।

सैनिक जनाबाई को ले जा रहे थे और रास्ते में उसके लिए लोग कुछ-का-कुछ बोलते जा रहे थेः "बड़ी आयी भक्तानी ! भक्ति का ढोंग करती थी... अब तो तेरी पोल खुल गयी।" यह देख सज्जन लोगों के मन में दुःख हो रहा था।

ऐसा करते-करते जनाबाई सूली तक पहुँच गयी। तब जल्लादों ने उससे पूछाः "अब तुमको मृत्युदंड दिया जा रहा है, तुम्हारी आखिरी इच्छा क्या है?"

जनाबाई ने कहाः "आप लोग तनिक ठहर जायें ताकि मरते-मरते मैं दो अभंग गा लूँ।"

आप लोग चौपाई, दोहे, साखी आदि बोलते हो ऐसे ही महाराष्ट्र में 'अभंग' बोलते हैं। अभी भी जनाबाई के लगभग तीन सौ अभंग उपलब्ध हैं। जनाबाई भगवत्स्मरण करके श्रद्धा भक्ति भरे हृदय स अभंग द्वारा विट्ठल से प्रार्थना करने लगीः

करो दया हे विट्ठलाया, करो दया हे विट्ठलराया !
छलती कैसे है छलनी माया।।
करो दया हे विट्ठलराया, करो दया हे विट्ठलराया !

श्रद्धाभक्ति पूर्ण हृदय से की गयी प्रार्थना हृदयेश्वर, सर्वेश्वर तक अवश्य पहुँचती है। प्रार्थना करते-करते उसकी आँखों से अश्रुबिन्दु छलक पड़े और जिस सूली पर उसे लटकाया जाना था, वह सूली पानी हो गयी !

सच्चे हृदय की भक्ति प्रकृति के नियमों में भी परिवर्तन कर देती है। लोग यह देखकर दंग रह गये ! राजा ने उससे क्षमा-याचना की। जनाबाई की जय-जयकार हो गयी।

विरोधी भले कितना भी विरोध करें लेकिन सच्चे भगवदभक्त तो अपनी भक्ति में दृढ़ रहते हैं। ठीक ही कहा हैः

बाधाएँ कब बाँध सकी हैं, आगे बढ़नेवालों को।
विपदाएँ कब रोक सकी हैं, पथ पर चलने वालों को।।

हे भारत की देवियो ! याद करो अपने अतीत की महान नारियों को.... तुम्हारा जन्म भी उसी भूमि पर हुआ है, जिस पुण्य भूमि भारत में सुलभा, गार्गी, मदालसा, शबरी, मीरा, जनाबाई जैसी नारियों ने जन्म लिया था। अनेक विघ्न बाधाएँ भी उनकी भक्ति एवं निष्ठा को न डिगा पायी थीं।

हे भारत की नारियो ! पाश्चात्य संस्कृति की चकाचौंध में अपने संस्कृति की गरिमा को भुला बैठना कहाँ तक उचित है? पतन की ओर ले जानेवाली संस्कृति का अनुसरण करने की अपेक्षा अपनी संस्कृति को अपनाओ ताकि तुम्हारा जीवन तो समुन्नत हो ही, तुम्हारी संतान भी सर्वांगीण प्रगति कर सके और भारत पुनः विश्वगुरु की पदवी पर आसीन हो सके....

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

अनुक्रम

मुक्ताबाई का सर्वत्र विट्ठल-दर्शन

श्रीनिवृत्तिनाथ, ज्ञानेश्वर एवं सोपानदेव की छोटी बहन थी मुक्ताबाई। जन्म से ही चारों सिद्ध योगी, परम विरक्त एवं सच्चे भगवदभक्त थे। बड़े भाई निवृत्तिनाथ ही सबके गुरु थे।

नन्हीं सी मुक्ता कहतीः "विट्ठल ही मेरे पिता हैं। शरीर के माता-पिता तो मर जाते हैं लेकिन हमारे सच्चे माता-पिता, हमारे परमात्मा तो सदा साथ रहते हैं।"

उसने सत्संग में सुन रखा था कि 'विट्ठल केवल मंदिर में ही नहीं, विट्ठल तो सबका आत्मा बना बैठा है। सारे शरीरों में उसी की चेतना है। वह कीड़ी में छोटा और हाथी में बड़ा लगता है। विद्वानों की विद्या की गहराई में उसी की चेतना है। बलवानों का बल उसी परमेश्वर का है। संतों का संतत्व उसी परमात्म-सत्ता से है। जिसकी सत्ता से आँखें देखती हैं, कान सुनते हैं, नासिका श्वास लेती है, जिह्वा स्वाद का अनुभव करती है वही विट्ठल है।'

मुक्ताबाई किसी पुष्प को देखती तो प्रसन्न होकर कह उठती कि विट्ठल बड़े अच्छे हैं।

एक दिन मुक्ताबाई कह उठीः "विट्ठल ! तुम कितने गंदे हो। ऐसी गंदगी में रहते हो।"

किसी ने पूछाः "कहाँ है विट्ठल?"

मुक्ताबाईः "देखो न, इस गंदी नाली में विट्ठल कीड़ा बने बैठे हैं।"

मुक्ताबाई की दृष्टि कितनी सात्त्विक हो गयी थी ! वह सर्वत्र अपने विट्ठल के दीदार कर रही थी।

चारों बच्चों को एक संन्यासी के बच्चे मानकर कट्टरवादियों ने उन्हें नमाज से बाहर कर दिया था। उनके माता-पिता के साथ तो जुल्म किया ही था, बच्चों को भी समाज से बाहर कर रखा था। अतः कोई उन्हें मदद नहीं करता था। पेट को आहुति देने के लिए वे बच्चे भिक्षा माँगने जाते थे।

दीपावली के दिन वह बारह वर्षीया मुक्ताबाई निवृत्तिनाथ से पूछती हैः "भैया ! आज दीपावली है, क्या बनाऊँ?"

निवृत्तिनाथः "बहन ! मेरी तो मर्जी है कि आज मीठे चीले बना ले।"

ज्ञानेश्वरः "तीखे भी तो अच्छे लगते हैं।"

मुक्ताबाई हर्ष से बोल पड़ीः "मीठे भी बनाऊँगी और नमकीन भी। आज तो दीपावली है।"

बाहर से तो दरिद्रता दिखती है, समाजवालों ने बहिष्कृत कर रखा है, न धन है, न दौलत, न बैंक बैलेन्स है। न कार है न बँगला। साधारण सा घर है, फिर भी विट्ठल के भाव में सराबोर हृदय के भीतर का सुख असीम है।

मुक्ताबाई ने अंदर जाकर देखा तो तवा ही नहीं था क्योंकि विसोबा चाटी ने रात्री में ही सारे बर्तन चोरी करवा दिये थे। बिना तवे के चीले कैसे बनेंगे? वह "भैया ! मैं कुम्हार के यहाँ से रोटी सेंकने का तवा ले आती हूँ।" ऐसा कह जल्दी से निकल पड़ी तवा लाने के लिए। लेकिन विसोबा चाटी ने सभी कुम्हारों को डाँटकर मना कर दिया था कि 'खबरदार ! इसको तवा दिया तो तुमको जाति से बाहर करवा दूँगा।'

घूमते-घूमते कुम्हारों के द्वार खटखटाते हुए आखिर उदास होकर वापस लौटी। मजाक उड़ाते हुए विसोबा चाटी ने पूछाः "क्यों? कहाँ गयी थी?"

मुक्ता ने सरलता से उत्तर दियाः "मैं बाहर से तवा लेने गयी थी लेकिन कोई देता ही नहीं है।"

घर पहुँचते ही ज्ञानेश्वर ने उसकी उदासी का कारण पूछा तो मुक्ता ने सारा हाल सुना दिया।

ज्ञानेश्वरः "कोई बात नहीं। तू आटा तो मिला।"

मुक्ताबाईः "आटा तो मिला मिलाया है।"

ज्ञानेश्वर नंगी पीठ करके बैठ गये। उन योगिराज ने प्राणों का संयम करके पीठ पर अग्नि की भावना की। पीठ तप्त तवे की भाँति लाल हो गयी। "ले जितनी रोटी या चीले सेंकने हो, इस पर सेंक ले।"

मुक्ताबाई स्वयं योगिनी थी। भाइयों की शक्ति को जानती थी। उसने बहुत से मीठे और नमकीन चीले व रोटियाँ बना लीं। फिर कहाः "भैया ! अपने तवे को शीतल कर लो।"

ज्ञानेश्वर ने अग्निधारण का उपसंहार कर दिया।

संकल्प बल से तो अभी भी कुछ लोग चमत्कार करके दिखाते हैं। ज्ञानेश्वर महाराज ने अग्नि तत्त्व की धारणा करके अग्नि को प्रकट कर दिया था। वे सत्य-संकल्प एवं योगशक्ति-संपन्न पुरुष थे। जैसे आप स्वप्न में अग्नि, जल आदि सब बना लेते हैं, वैसे ही योगशक्ति-संपन्न पुरुष जाग्रत में जिस तत्त्व की धारणा करें उसे बढ़ा अथवा घटा सकते हैं।

जल तत्त्व की धारणा सिद्ध हो जाये तो आप जहाँ जल में गोता मारो और हजारों मील दूर निकलो। पृथ्वी तत्त्व की धारणा सिद्ध है तो आपको यहाँ गाड़ दें और आप हजारों मील दूर प्रकट हो जाओ। ऐसे ही वायु तत्त्व, अग्नि तत्त्व आदि की धारणा भी सिद्ध की जा सकती है। कबीरजी के जीवन में भी ऐसे चमत्कार हुए थे और दूसरे योगियों के जीवन में भी देखे-सुने गये थे।

मेरे गुरुदेव परम पूज्य स्वामी श्रीलीलाशाहजी महाराज ने नीम के पेड़ को आज्ञा दी कि 'तू अपनी जगह पर जा।' तो वह पेड़ चल पड़ा। तबसे 'लीलाराम' में से 'श्री लीलाशाह' के नाम से वे प्रसिद्ध हुए। योगशक्ति में बड़ा सामर्थ्य होता है।

आप ऐसा सामर्थ्य पा लो, ऐसा मेरा आग्रह नहीं है, लेकिन थोड़े से सुख के लिए, क्षणिक सुख के लिए बाहर न भागना पड़े ऐसे स्वाधीन हो जाओ। सिद्धियाँ पाने की कुबेर साधना करना आवश्यक नहीं है लेकिन सुख-दुःख के झटकों से बचने की सरल साधना अवश्य कर लो।

निवृत्तिनाथ भोजन करते हुए भोजन की प्रशंसा कर रहे थेः "मुक्ति ने निर्मित किये और ज्ञान की अग्नि में सेंके गये चीले के स्वाद का क्या पूछना !"

निवृत्तिनाथ, ज्ञानेश्वर एवं सोपानदेव तीनों भाइयों ने भोजन कर लिया था। इतने में एक बड़ा सा काला कुत्ता आया और बाकी चीले लेकर भागा।

निवृत्तिनाथ ने कहाः "अरे, मुक्ता ! मार जल्दी इस कुत्ते को। तेरे हिस्से के चीले वह ले जा रहा है। तू भूखी रह जायेगी।"

मुक्ताबाईः "मारूँ किसे? विट्ठल ही तो कुत्ता बन गये हैं। विट्ठल काला-कलूटा रूप लेकर आये हैं। उनको क्यों मारूँ?"

तीनों भाई हँस पड़े। ज्ञानेश्वर ने पूछाः "जो तेरे चीले ले गया वह काला कलूटा कुत्ता तो विट्ठल है और विसोबा चाटी?"

मुक्ताबाईः "वे भी विट्ठल ही है।"

अलग-अलग मन का स्वभाव अलग-अलग होता है लेकिन चेतना तो सबमें विट्ठल की ही है। वह बारह वर्षीया कन्या मुक्ताबाई कहती हैः "विसोबा चाटी में भी वही विट्ठल है।"

विसोबा चाटी कुम्हार के घर से ही मुक्ता का पीछा करता आया था। वह देखना चाहता था कि तवा न मिलने पर ये सब क्या करते हैं? वह दीवार के पीछे से सारा खेल देख रहा था। मुक्ताबाई के शब्द सुनकर विसोबा चाटी का हृदय अपने हाथों में नहीं रहा। भागता हुआ आकर सूखे बाँस की नाईं मुक्ताबाई के चरणों में गिर पड़ा।

"मुक्तादेवी मुझे माफ कर दो। मेरे जैसा अधम कौन होगा? मैंने बहकानेवाली बातें सुनकर आप लोगों को बहुत सताया है। आप लोग मुझ पामर को क्षमा कर दें। मुझे अपनी शरण में ले लें। आप अवतारी पुरुष हैं। सबमें विट्ठल देखने की भावना में सफल हो गये हैं। मैं उम्र में तो आपसे बड़ा हूँ लेकिन भगवदज्ञान में तुच्छ हूँ। आप लोग उम्र में छोटे हैं लेकिन भगवदज्ञान में पूजनीय, आदरणीय हैं। मुझे अपने चरणों में स्थान दें।"

कई दिनों तक विसोबा अनुनय-विनय करता रहा। आखिर उसके पश्चाताप को देखकर निवृत्तिनाथ ने उसे उपदेश दिया और मुक्ताबाई से दीक्षा-शिक्षा मिली। वही विसोबा चाटी प्रसिद्ध महात्मा विसोबा खेचर हो गये। जिनके द्वारा प्रसिद्ध संत नामदेव ने दीक्षा प्राप्त की।

बारह वर्षीया बालिका मुक्ताबाई केवल बालिका नहीं थी, वह तो आद्यशक्ति का स्वरूप थी। जिनकी कृपा से विसोबा चाटी जैसा ईर्ष्यालु प्रसिद्ध संत विसोबा खेचर हो गये !

नारी ! तू नारायणी है। देवी ! संयम-साधना द्वारा अपने आत्मस्वरूप को पहचान ले।

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

अनुक्रम

रतनबाई की गुरुभक्ति

गुजरात के सौराष्ट्र प्रान्त में नरसिंह मेहता नाम के एक उच्चकोटि के महापुरुष हो गये। वे जब भजन गाते तो श्रोतागण भक्तिभाव से सराबोर हो उठते थे।

दो लड़कियाँ नरसिंह मेहता की बड़ी भक्तिन थीं। लोगों ने अफवाह फैला दी की उन दो कुंवारी युवतियों के साथ नरसिंह मेहता का कुछ गलत सम्बन्ध है। अफवाह बड़ी तेजी से फैल गयी।

कलियुग में बुरी बात फैलाना बड़ा आसान है। जिसके अन्दर बुराइयाँ हैं वह आदमी दूसरों की बुरी बात जल्दी से मान लेता है।

उन लड़कियों के पिता और भाई भी ऐसे ही थे। उन्होंने लड़कियों की खूब पिटाई की और कहाः "तुम लोगों ने तो हमारी इज्जत खराब कर दी। हम बाजार से गुजरते हैं तो लोग बोलते हैं कि इन्हीं की दो लड़कियाँ हैं, जिनके साथ नरसिंह मेहता का...."

खूब मार-पीटकर उन दोनों को कमरे में बन्द कर दिया और अलीगढ़ के बड़े-बड़े ताले लगा दिये। फिर चाबी अपनी जेब में डालकर दोनों चल दिये कि 'देखें', आज कथा में क्या होता है।'

उन दोनों लड़कियों में से एक रतनबाई रोज सत्संग-कीर्तन के दौरान अपने हाथों से पानी का गिलास भरकर भाव भरे भजन गाने वाले नरसिंह मेहता के होठों तक ले जाती थी। लोगों ने रतनबाई का भाव एवं नरसिंह मेहता की भक्ति नहीं देखी, बल्कि पानी पिलाने की बाह्य क्रिया को देखकर उलटा अर्थ लगा लिया।

सरपंच ने घोषित कर दियाः "आज से नरसिंह मेहता गाँव के चौराहे पर ही सत्संग-कीर्तन करेंगे, घर पर नहीं।"

नरसिंह मेहता ने चौराहे पर सत्संग-कीर्तन किया। विवादित बात छिड़ने के कारण भीड़ बढ़ गयी थी। कीर्तन करते-करते रात्री के 12 बज गये। नरसिंह मेहता रोज इसी समय पानी पीते थे, अतः उन्हें प्यास लगी।

इधर रतनबाई को भी याद आया कि 'गुरुजी को प्यास लगी होगी। कौन पानी पिलायेगा?' रतनबाई ने बंद कमरे में ही मटके में से प्याला भरकर, भावपूर्ण हृदय से आँखें बंद करके मन-ही-मन प्याला गुरुजी के होठों पर लगाया।

जहाँ नरसिंह मेहता कीर्तन-सत्संग कर रहे थे, वहाँ लोगों को रतनबाई पानी पिलाती हुई नजर आयी। लड़की का बाप एवं भाई दोनों आश्चर्यचकित हो उठे कि 'रतनबाई इधर कैसे?'

वास्तव में तो रतनबाई अपने कमरे में ही थी। पानी का प्याला भरकर भावना से पिला रही थी, लेकिन उसकी भाव की एकाकारता इतनी सघन हो गयी कि वह चौराहे के बीच लोगों को दिखी।

अतः मानना पड़ता है कि जहाँ आदमी का मन अत्यंत एकाकार हो जाता है, उसका शरीर दूसरी जगह होते हुए भी वहाँ दिख जाता है।

रतनबाई के बाप ने पुत्र से पूछाः "रतन इधर कैसे?"

रतनबाई के भाई ने कहाः "पिताजी ! चाबी तो मेरी जेब में है !"

दोनों भागे घर की ओर। ताला खोलकर देखा तो रतनबाई कमरे के अंदर ही है और उसके हाथ में प्याला है। रतनबाई पानी पिलाने की मुद्रा में है। दोनों आश्चर्यचकित हो उठे कि यह कैसे !

संत एवं समाज के बीच सदा से ही ऐसा ही चलता आया है। कुछ असामाजिक तत्त्व संत एवं संत के प्यारों को बदनाम करने की कोई भी कसर बाकी नहीं रखते। किंतु संतों-महापुरुषों के सच्चे भक्त उन सब बदनामियों की परवाह नहीं करते, वरन् वे तो लगे ही रहते हैं संतों के दैवी कार्यों में।

ठीक ही कहा हैः

इल्जाम लगानेवालों ने इल्जाम लगाये लाख मगर।

तेरी सौगात समझकर के हम सिर पे उठाये जाते हैं।।

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

अनुक्रम

ब्रह्मलीन श्री माँ महँगीबा

[परम पूज्य बापूजी की ब्रह्मलीन मातुश्री माँ महँगीबा (पूजनीया अम्मा) के कुछ मधुर संस्मरण स्वयं पूज्य बापूजी के शब्दों....]

मेरी माँ का दिव्य गुरुभाव

माँ बालक की प्रथम गुरु होती है। बालक पर उसके लाख-लाख उपकार होते हैं। व्यवहारिक दृष्टि से मैं उनका पुत्र था फिर भी मेरे प्रति उनकी गुरुनिष्ठा निराली थी !

एक बार वे दही खा रही थीं तो मैंने कहाः "दही आपके लिए ठीक नहीं रहेगा।"

उनके जाने (महाप्रयाण) के कुछ समय पूर्व ही उनकी सेविका ने मुझे बताया कि "अम्मा ने फिर कभी दही नहीं खाया क्योंकि गुरुजी ने मना किया था।"

इसी प्रकार एक अन्य अवसर पर माँ भुट्टा (मकई) खा रही थीं। मैंने कहाः "भुट्टा तो भारी होता है, बुढापे में देर से पचता है। क्यों खाती हो?"

माँ ने भुट्टे खाना भी छोड़ दिया। फिर दूसरे-तीसरे दिन उन्हे भुट्टा दिया गया तो वे बोलीः "गुरुजी ने मना किया है। गुरु 'ना' बोलते हैं को क्या खायें?"

माँ को आम बहुत पसन्द था किंतु उनके स्वास्थ्य के अनुकूल न होने के कारण मैंने उसके लिए भी मना किया तो माँ ने उसे भी खाना छोड़ दिया।

माँ का विश्वास बड़ा गज़ब का खा था ! एक बार कह दिया तो बात पूरी हो गयी। अब, 'उसमें विटामिन्स हैं कि नहीं..... मेरे लिए हानिकारक है या अच्छा....' उनको कुछ सुनने की जरूरत नहीं है। बापू ने 'ना' बोल दिया तो बात पूरी हो गयी।

श्रद्धा की हद हो गयी ! श्रद्धा इतनी बढ़ गयी, इतनी बढ़ गयी कि उसने विश्वास का रूप धारण कर लिया। श्रद्धा और विश्वास में फर्क है। श्रद्धा सामनेवाले की महानता को देखकर करनी पड़ती है, जबकि विश्वास पैदा होता। श्रीरामचरितमानस में आता हैः

भवानीशंकरौ वन्दे श्रद्धाविश्वासरूपिणौ।

माँ पार्वती श्रद्धा का और भगवान शिव विश्वास का स्वरूप है। ये श्रद्धा और विश्वास जिसमें है समझो, वह शिव-पार्वतीस्वरूप हो गया। मेरी माँ में पार्वती का स्वरूप तो था ही, साथ में शिव का स्वरूप भी था। मैं एक बार जो कह देता, उनके लिए वह पत्थर पर लकीर हो जाता।

पुत्र में दिव्य संस्कार डालने वाली पुण्यशीला माताएँ तो इस धरा पर कई हो गयीं। विनोबा भावे की माता ने उन्हें बाल्यकाल से ही उच्च संस्कार डाले थे। बाल्यकाल से ही शिवाजी में भारतीय संस्कृति की गरिमा एवं अस्मिता की रक्षा के संस्कार डालनेवाली भी उनकी माता जीजाबाई ही थीं, लेकिन पुत्र को गुरु मानने का भाव.... देवहूति के सिवाय किसी अन्य माता में मैंने आज तक नहीं देखा था।

मेरी माँ पहले तो मुझे पुत्रवत प्यार करती थीं लेकिन जबसे उनकी मेरे प्रति गुरु की नजर बनी, तबसे मेरे साथ पुत्ररूप से व्यवहार नहीं किया। वे अपनी सेविका से हमेशा कहतीं-

"साईंजी आये हैं.... साईंजी का जो खाना बचा है वह मुझे दे दे...." आदि-आदि।

एक बार की बात है। माँ ने मुझसे कहाः "प्रसाद दो।"

हद हो गयी ! ऐसी श्रद्धा ! पुत्र में इस प्रकार की श्रद्धा कोई साधारण बात है? उनकी श्रद्धा को नमन है बाबा !

मेरी ये माता शरीर को जन्म देनेवाली माता तो हैं ही, भक्तिमार्ग की गुरु भी हैं, समता में रहने वाली और समाज के उत्थान की प्रेरणा देने वाली माता भी हैं। यही नहीं, इन सबसे बढ़कर इन माता ने एक ऐसी गजब की भूमिका अदा की है कि जिसका उल्लेख इतिहास में कभी-कभार ही दिखाई पड़ता है। सतियों की महिमा हमने पढ़ी, सुनी, सुनायी.... अपने पति को परमात्मा माननेवाली देवियों की सूची भी हम दिखा सकते हैं, लेकिन पुत्र में गुरुबुद्धि..... पुत्र में परमात्मबुद्धि... ऐसी श्रद्धा हमने एक देवहूति माता में देखी, जो कपिल मुनि को अपना गुरु मानकर, आत्म-साक्षात्कार करके तर गयीं और दूसरी ये माता मेरे ध्यान में हैं।

एक बार मैं अचानक बाहर चला गया और जब लौटा तो सेविका ने बताया कि "माताजी बात नहीं करती हैं।"

मैंने पूछाः "क्यों?"

सेविकाः "वे कहती हैं कि साँईं मना कर गये हैं कि किसी से बात नहीं करना तो क्यों बातचीत करूँ?"

मेरे निकटवर्ती कहलाने वाले शिष्य भी मेरी आज्ञा पर ऐसा अमल नहीं करते होंगे, जैसा इन देवीस्वरूपा माता ने अमल करके दिखाया है। माँ की श्रद्धा की कैसी पराकाष्ठा है ! मुझे ऐसी माँ का बेटा होने का व्यावहारिक गर्व है और ब्रह्मज्ञानी गुरु का शिष्य होने का भी गर्व है।

'प्रभु ! मुझे जाने दो....'

मेरी माँ मुझे बड़े आदर भाव से देखा करती थीं। जब उनकी उम्र करीब 86 वर्ष की थी तब उनका शरीर काफी बीमार हो गया था। डॉक्टरों ने कहाः "लीवर और किडनी दोनों खराब हैं। एक दिन से ज्यादा नहीं जी सकेंगी।"

23घण्टे बीत गये। मैंने अपने वैद्य को भेजा तो वैद्य भी उतरा हुआ मुँह लेकर मेरे पास आया और बोलाः "बापू ! एक घण्टे से ज्यादा नहीं निकाल पायेंगी माँ।"

मैंने कहाः "भाई ! तू कुछ तो कर ! मेरा वैद्य है... इतने चिकित्सालय देखता है..."

वैद्यः "बापू ! अब कुछ नहीं हो सकेगा।"

माँ कराह रही थी। करवट भी नहीं ले पा रही थीं। जब लीवर और किडनी दोनों निष्क्रिय हों तो क्या करेंगे आपके इंजेक्शन और दवाएँ? मैं गया माँ के पास तो माँ ने इस ढंग से हाथ जोड़े मानों, जाने की आज्ञा माँग रही हों। फिर धीरे से बोलीं-

"प्रभु ! मुझे जाने दो।"

ऐसा नहीं कि, 'बेटा मुझे जाने दो..' नहीं, नहीं। माँ ने कहाः "भगवान ! मुझे जाने दो.... प्रभु ! मुझे जाने दो।"

मैंने उनके प्रभु-भाव और भगवान भाव का जी भरकर फायदा उठाया और कहाः

"मैं नहीं जाने देता। तुम कैसे जाती हो, मैं देखता हूँ।"

माँ बोलीः "प्रभु ! पर मैं करूँ क्या?"

मैंने कहाः "मैं स्वास्थ्य का मंत्र देता हूँ।"

उर्वर भूमि पर उलटा-सीधा बीज बड़े तो भी उगता है। माँ का हृदय ऐसा ही था। मैंने उनको मंत्र दिया और उन्होंने रटना चालू किया। एक घण्टे में जो मरने की नौबत देख रही थीं, अब एक घण्टे के बाद उनके स्वास्थ्य में सुधार शुरु हो गया. फिर एक महीना... दो महीने.... पाँच महीने... पंद्रह महीने... पच्चीस महीने.... चालीस महीने.... ऐसा करते-करते साठ से भी ज्यादा महीने हो गये। तब वे 86 वर्ष की थीं, अभी 92 वर्ष पार कर गयीं। जब आज्ञा मिली... रोकने का संकल्प लगाया तो उसे हटाने का कर्तव्य भी मेरा था। अतः आज्ञा मिलने पर ही उन्होंने शरीर छोड़ा। गुरुआज्ञा-पालन का कैसा दृढ़ भाव !

इच्छाओं से परेः माँ महँगीबा

एक बार मैंने माँ से कहाः "आपको सोने में तौलेंगे।"

....लेकिन उनके चेहरे पर हर्ष का कोई चिह्न नजर नहीं आया।

मैंने पुनः हिला-हिलाकर कहाः "आपको सोने में तौलेंगे, सोने में।"

माः "यह सब मुझे अच्छा नहीं लगता।"

मैंने कहाः "तुला हुआ सोना महिला आश्रम ट्रस्ट में जमा करेंगे। फिर महिलाओं और गरीबों की सेवा में लगेगा।"

माँ- "हाँ... सेवा में भले लगे, लेकिन मेरे को तौलना-वौलना नहीं।"

सुवर्ण महोत्सव के पहले ही माँ की यात्रा पूरी हो गयी। बाद में सुवर्ण महोत्सव के निमित्त जो भी करना था, वह किया ही।

मैंने कहाः "आपका मंदिर बनायेंगे।"

माँ- "ये सब कुछ नहीं करना है।"

मैं- "आपकी क्या इच्छा है? हरिद्वार जायें?"

माँ- "वहाँ तो नहाकर आये।"

मैं- "क्या खाना है? यह खाना है?"

माँ- "मुझे अच्छा नहीं लगता।"

कई बार विनोद का समय मिलता तो हम पूछते। कई ख्वाहिश पूछ-पूछकर थक गये लेकिन उनकी कोई ख्वाहिश हमको दिखी नहीं। अगर उनकी कोई भी इच्छा होती तो उनके इच्छित पदार्थ को लाने की सुविधा मेरे पास थी। किसी व्यक्ति से, पुत्र से, पुत्री से, कुटुम्बी से मिलने की इच्छा होती तो उनसे भी मिला देते। कहीं जाने की इच्छा होती तो वहाँ ले जाते लेकिन उनकी कोई इच्छा ही नहीं थी।

न उनमें कुछ खाने की इच्छा थी, न कहीं जाने की, न किसी से मिलने की इच्छा थी, न ही यश-मान की... तभी तो उन्हें इतना मान मिल रहा है। जहाँ मान-अपमान सब स्वप्न है, उसमें उनकी स्थिति हुई, इसीलिए ऐसा हो रहा है।

इस प्रसंग से करोड़ो-करोड़ों लोगों को, समग्र मानव-जाति को जरूर प्रेरणा मिलेगी।

अनुक्रम

जीवन में कभी फरियाद नहीं.....

मैंने अपनी माँ को कभी कोई फरियाद करते हुए नहीं देखा कि 'मुझे इसने दुःख दिया.. उसने कष्ट दिया... यह ऐसा है.... जब हम घर पर थे, तब बड़ा भाई जाकर मेरे बारे में माँ से फरियाद कि "वह तो दुकान पर आता ही नहीं है।"

माँ मुझसे कहतीं- "अब क्या करूँ। वह तो ऐसा बोलता है।"

जब माँ आश्रम में रहने लगी तब भी आश्रम की बच्चियों की कभी फरियाद नहीं... आश्रम के बच्चों की कभी फरियाद नहीं। कैसा मूक जीवन ! ऐसी आत्माएँ धरती पर कभी-कभार ही आती हैं, इसीलिए वह वसुन्धरा टिकी हुई है। मुझे इस बात का बड़ा संतोष है कि ऐसी तपस्विनी माता की कोख से यह शरीर पैदा हुआ है।

उनके चित्त की निर्मलता से मुझे तो बड़ी मदद मिली, आप लोगों को भी बड़ा अच्छा लगता होगा। मुझे तो लगता है कि जो भी महिलाएँ माँ के निकट आयी होंगी, उनके हृदय में माता के प्रति अहोभाव जग ही गया होगा।

'मैं तो संत की माँ हूँ.... ये लोग साधारण हैं...' ऐसा भाव कभी किसी ने उनमें नहीं देखा। अथवा 'हम बड़े हैं... पूजने योग्य हैं... लोग हमें प्रणाम करें... मान दें.... ऐसा किसी ने उनमें नहीं देखा अपितु यह जरूर देखा है कि वे किसी को प्रणाम नहीं करने देती थीं।

ऐसी माँ के संपर्क में हम आये हैं तो हमें भी ऐसा चित्त बनाना चाहिए कि हम भी सुख-दुःख में सम रहें। अपनी आवश्यकताएँ कम करें। हृदय में भेदभाव न रहे। सबके मंगल का भाव रखें।

अनुक्रम

बीमारों के प्रति माँ की करूणा

मुझे इस बात का पता अभी तक नहीं थी, अभी रसोइये ने और दूसरे लोगों ने बताया कि जब भी कोई आश्रमवासी बीमार पड़ जाता तो माँ उसके पास स्वयं चली जातीं थीं। संचालक रामभाई ने बताया कि "एक बार मैं बहुत बीमार पड़ गया तो माँ आयीं और मेरे ऊपर से कुछ उतारा करके उसे अग्नि में फेंक दिया। उन्होंने ऐसा तीन दिन तक किया और मैं ठीक हो गया।"

दूसरे लड़कों ने भी बताया कि "हमको भी कभी कुछ होता और माँ को पता चलता तो वे देखने आ ही जाती थीं।"

एक बार आश्रम में किसी महिला को बुखार हो गया तो माँ स्वयं उसका सिर दबाने बैठ गयीं। महिला आश्रम में भी कोई साधिका बीमार पड़ती तो माँ उसका ध्यान रखतीं। यदि वह ऊपर के कमरे में होती तो माँ कहतीं- "बेचारी को नीचे का कमरा दो, बीमारी में ऊपर-नीचे आना-जाना नहीं कर पायेगी।" ऐसा था उनका परदुःखकातर हृदय !

अनुक्रम

'कोई कार्य घृणित नहीं है....'

एक बार आश्रम के एक बुजुर्ग साधक ने एक लड़के का कच्छा-लँगोट गंदा देखा तो उसको फटकार लगायी। लेकिन माँ तो ऐसे कई कच्छे-लँगोट चुपचाप धोकर बच्चों के कमरे के किनारे रख देती थीं। कई गंदे-मैले कच्छे, जिन्हे खुद भी धोने में घृणा होती हो, ऐसे कपड़ों को धोकर माँ बच्चों के कमरों के किनारे चुपचाप रख दिया करतीं।

कैसा उदार हृदय रहा होगा माँ का ! कैसा दिव्य वात्सल्यभाव रहा होगा ! अंतः करण में व्यावहारिक वेदान्त की कैसी दिव्य धारा रही होगी ! सभी के प्रति कैसी दिव्य संतान भावना रही होगी !

सफाई के जिस कार्य को लोग घृणित समझते हैं, उस कार्य को करने में भी माँ को घृणा नहीं होती थी। कितनी उनकी महानता ! सचमुच, वे शबरी माँ ही थीं।

अनुक्रम

ऐसी माँ के लिए शोक किस बात का?

जिस दिन मेरे सदगुरुदेव का महानिर्वाण हुआ, उसी दिन मेरी माता का भी महानिर्वाण हुआ। 4 नवम्बर, 1999 तदनुसार एकादशी का दिन, कार्तिक का महीना, गुजरात के मुताबिक आश्विन, संवत 2055 एवं गुरुवार। न इंजेक्शन भुकवाये, न आक्सीजन पर रहीं, न अस्पताल में भर्ती हुई वरन् आश्रम की एकांत जगह पर, ब्राह्ममुहूर्त में 5 बजकर 37 मिनट पर बिना किसी ममता- आसक्ति के उनका नश्वर देह छूटा। पंछी पिंजरा छोड़कर आजाद हुआ, ब्रह्म हुआ तो शोक किस बात का?

व्यवहारकाल में लोग बोलते हैं कि 'बापू जी ! यह शोक की वेला है। हम सब आपके साथ हैं...' ठीक है, यह व्यवहार की भाषा है लेकिन सच्ची बात तो यह है कि मुझे शोक हुआ ही नहीं है। मुझमें तो बड़ी शांति, बड़ी समता है क्योंकि माँ अपना काम बनाकर गयी हैं।

संत मरे क्या रोइये, वे जायें अपने घर...

माँ ने आत्मज्ञान के उजाले में देह का त्याग किया है। शरीर से स्वयं को पृथक् मानने की उनकी रूचि थी, वासना को मिटाने की कुंजी उनके पास थी, यश और मान से वे कोसों दूर थीं। ॐ....ॐ.... का चिंतन-गुंजन करके, अंतर्मन में यात्रा करके दो दिन के बाद वे विदा हुईं।

जैसे कपिल मुनि की माँ देवहूति आत्मारामी हुई ऐसे ही माँ महँगीबा आत्मारामी होकर, नश्वर चोले को छोड़कर, शाश्वत सत्ता में लीन हुईं अथवा संकल्प करके कहीं भी प्रकट हो सकें, ऐसी दशा में पहुँचीं। ऐसी माँ के लिए शोक किस बात का?

जिनके जीवन में कभी किसी के लिए फरियाद नहीं रही, ऐसी आत्माएँ धरती पर कभी-कभार ही आती है। इसीलिए यह वसुन्धरा टिकी हुई है।

मुझे इस बात का भी संतोष है कि आखिरी दिनों में मैं उनके ऋण से थोड़ा मुक्त हो पाया। इधर-उधर के कई कार्यक्रम होते रहते थे लेकिन हम कार्यक्रम ऐसे ही बनाते कि माँ याद करें और हम पहुँच जायें।

मेरे गुरुजी जब इस संसार से विदा हुए तो उन्होंने भी मेरी ही गोद में महाप्रयाण किया और मेरी माँ के महानिर्वाण के समय भी भगवान ने मुझे यह अवसर दिया-इस बात का मुझे संतोष है।

मंगल मनाना यह तो हमारी संस्कृति में है लेकिन शोक मनाना – यह हमारी संस्कृति में नहीं है। हम श्रीरामचंद्रजी का प्राकट्य दिवस – रामनवमी बड़ी धूमधाम से मनाते हैं लेकिन श्रीकृष्ण और श्रीरामजी जिस दिन विदा हुए, उसे हम शोकदिवस के रूप में नहीं मनाते हैं, हमें उस दिन का पता ही नहीं है।

शोक और मोह – ये आत्मा की स्वाभाविक दशाएँ नहीं हैं। शोक और मोह तो जगत को सत्य मानने की गलती से होता है। इसीलिए अवतारी महापुरुषों की विदाई का दिन भी हमको याद नहीं कि किस दिन वे विदा हुए और हम शोक मनायें।

हाँ, किन्हीं-किन्हीं महापुरुषों की निर्वाण तिथि जरूर मनाते हैं जैसे, वाल्मीकि निर्वाण तिथि, बुद्ध की निर्वाण तिथि, कबीर, नानक, श्रीरामकृष्णपरमहंस अथवा श्रीलीलाशाहजी बापू आदि ब्रह्मवेत्ता महापुरुषों की निर्वाण तिथि मनाते हैं, लेकिन उस तिथि को हम शोक दिवस के रूप में नहीं मनाते वरन् उस तिथि को हम मनाते हैं उनके उदार विचारों का प्रचार-प्रसार करने के लिए, उनके मांगलिक कार्यों से सत्प्रेरणा पाने के लिए।

हम शोक दिवस नहीं मनाते हैं क्योंकि सनातन धर्म जानता है कि आपका स्वभाव अजर, अमर, अजन्मा, शाश्वत और नित्य है और मृत्यु शरीर की होती है। हम भी ऐसी दशा को प्राप्त हों, इस प्रकार के संस्मरणों का आदान-प्रदान निर्वाण तिथि पर करते हैं, महापुरुषों के सेवाकार्यों का स्मरण करते हैं एवं उनके दिव्य जीवन से प्रेरणा पाकर स्वयं भी उन्नत हो सकें – ऐसी उनसे प्रार्थना करते हैं।

ॐ

(परम पूज्य संत श्री आसारामजी बापू की पूजनीया मातुश्री माँ महँगीबा अर्थात् हम सबकी पूजनीया अम्मा के विशाल एवं विराट व्यक्तित्व का वर्णन करना मानों, गागर में सागर को समाने की चेष्टा करना है। वात्सल्य और प्रेम की साक्षात् मूर्ति, परोपकारिता एवं परदुःखकातरता से प्लावित हृदय, दिव्य गुरुनिष्ठा, स्वावलंबन एवं कर्मनिष्ठा, निराभिमानता की मूर्ति, भारतीय संस्कृति की रक्षक.... किन-किन गुणों का वर्णन करें? फिर भी उनके महान जीवन की वाटिका के कुछ पुष्प यहाँ प्रस्तुत करते हैं, जिनका सौरभ जन-जन को सुरभित किये बिना न रह सकेगा।)

अनुक्रम

अम्मा की गुरुनिष्ठा

अम्मा अर्थात् पूर्ण निरभिमानिता का मूर्त स्वरूप। उनका परोपकारी सरल स्वभाव, निष्काम सेवाभाव एवं परहितचिंतन किसी को भी उनके चरणों में स्वाभाविक ही झुकने के लिए प्रेरित कर दे। अनेकों साधक जब अम्मा के दर्शन करने के लिए जाते, तब कई बार संसार के ताप से तप्त हृदय उनके समक्ष खुल जातेः "अम्मा! आप आशीर्वाद दो न ! मैं परेशानियों से छूट जाऊँ..."

अम्मा का गुरुभक्त हृदय सामने वाले के हृदय में उत्साह एवं उमंग का संचार कर देता एवं उसकी गुरुनिष्ठा को मजबूत बना देता। वे कहतीं- "गुरुदेव बैठे हैं न ! हमेशा उन्हींसे प्रार्थना करो कि "हे गुरुवर ! हम आपके साथ का यह सम्बन्ध सदा के लिए निभा सकें ऐसी कृपा करना.... हम गुरु से निभाकर ही इस संसार से जायें..." माँगना हो तो गुरुदेव की भक्ति ही माँगना। मैं भी उनके पास से यही माँगती हूँ। अतः तुम्हें मेरा आशीर्वाद नहीं अपित गुरुदेव का अनुग्रह माँगते रहना चाहिए। वे ही हमें हिम्मत देंगे। बल देंगे। वे शक्तिदाता हैं न !"

साधना-पथ पर चलनेवाले गुरुभक्तों को अम्मा का यह उपदेश अपने हृदयपटल पर स्वर्णाक्षरों में अंकित कर लेना चाहिए।

अनुक्रम

स्वावलंबन एवं परदुःखकातरता

अम्मा प्रातःकाल सूर्योदय से पूर्व 4-5 बजे उठ जातीं और नित्यकर्म से निवृत्त होकर पहले अपने नियम करतीं। कितना भी कार्य हो, पर एक घण्टा तो जप करती ही थीं। यह बात तब की है जब तक उनके शरीर ने उनका साथ दिया। जब शरीर वृद्धावस्था के कारण थोड़ा अशक्त होने लगा तो फिर तो दिन भर जप करती रहती थीं।

82 वर्ष की अवस्था तक तो अम्मा अपना भोजन स्वयं बनाकर खाती थीं। आश्रम के अन्य सेवाकार्य करतीं, रसोईघर की देखरेख करतीं। बगीचे में पानी पिलातीं, सब्जी आदि तोड़कर लातीं बीमार का हालचाल पूछकर आतीं एवं रात्रि में भी एक-दो बजे आश्रम का चक्कर लगाने निकल पड़तीं। यदि शीतकाल का मौसम

होता, कोई ठंड से ठिठुर रहा होता तो चुपचाप उसे कंबल ओढ़ा आतीं। उसे पता भी नहीं चलता और वह शांति से सो जाता। उसे शांति से सोते देखकर अम्मा का मातृहृदय संतोष की साँस लेता। इसी प्रकार गरीबों में भी ऊनी वस्त्रों एवं कंबलों का वितरण पूजनीया अम्मा करतीं-करवातीं।

उनके लिए तो कोई भी पराया न था। चाहे आश्रमवासी बच्चे हों या सड़क पर रहने वाले दरिद्रनारायण, सबके लिए उनके वात्सल्य का झरना सदैव बहता ही रहता था। किसी को कोई कष्ट न हो, दुःख न हो, पीड़ा न हो इसके लिए स्वयं को कष्ट उठाना पड़े तो उन्हें मंजूर था, पर दूसरे की पीड़ा, दूसरे का कष्ट उनसे न देखा जाता था।

उनमें स्वावलंबन एवं परदुःखकातरता का अदभुत सम्मिश्रण था। वह भी इस तरह कि उसका कोई अहं नहीं, कोई गर्व नहीं। "सबमें परमात्मा है अतः किसी को दुःख क्यों पहुँचाना?" यह सूत्र उनके पूरे जीवन में ओतप्रोत नजर आता था। व्यवहार तो ठीक, वाणी के द्वारा भी कभी किसी का दिल अम्मा ने दुखाया हो, ऐसा देखने में नहीं आया।

सचमुच, पूजनीया अम्मा के ये सदगुण आत्मसात् करके प्रत्येक मानव अपने जीवन को दिव्य बना सकता है।

अनुक्रम

अम्मा में माँ यशोदा जैसा भाव

जब अम्मा पाकिस्तान में थीं तब तो नित्य नियम से छाछ-मक्खन बाँटा ही करती थीं, लेकिन भारत में आने पर भी उनका यह क्रम कभी नहीं टूटा। अपने आश्रम-निवास के दौरान अम्मा अपने हाथों से ही छाछ बिलोतीं एवं लोगों में छाछ-मक्खन बाँटती। जब तक शरीर ने साथ दिया तब तक स्वयं दही बिलोवा, लेकिन 82 वर्ष की अवस्था के बाद जब शरीर असमर्थ हो गया, तब भी दूसरों से मक्खन निकलवाकर बाँटा करतीं।

अपने जीवन के अंतिम 3-4 वर्ष अम्मा ने एकदम एकांत, शांत स्थल 'शांति वाटिका' में बिताये। वहाँ भी अम्मा कभी-कभार आश्रम से मक्खन मँगवाकर वाटिका के साधकों को देतीं।

अपनी जीवनलीला समाप्त करने से 4-5 महीन पूर्व अम्मा हिम्मतनगर आश्रम में थी। वहाँ तो मक्खन मिलता भी नहीं था, तब अमदावाद आश्रम से मक्खन मँगवाकर वहाँ के साधकों में बँटवाया। सबको मक्खन बाँटने में पूजनीया अम्मा बड़ी तृप्ति का अनुभव करतीं। ऐसा लगता मानों, माँ यशोदा अपने गोप-बालकों को मक्खन खिला रही हों !

अनुक्रम

देने की दिव्य भावना

अम्मा किसी को प्रसाद लिए बिना न जाने देती थीं। यह तो उनके संपर्क में आने वाले प्रत्येक व्यक्ति का अनुभव है।

नवरात्रि की घटना है। एक बार आगरा का एक भाई अम्मा को भेंट करने के लिए एक गुलदस्ता लेकर आया। दर्शन करके वह भाई तो चला गया। सेविका को उसे प्रसाद देना याद न रहा। अम्मा को इस बात का बड़ा दुःख हुआ कि वह भाई प्रसाद लिए बिना चला गया। अचानक वह भाई किसी कारणवश पुनः अम्मा की कुटीर के पास आया। उसे बुलाकर अम्मा ने प्रसाद दिया, तभी उनको चैन पड़ा।

ऐसा तो एक-दो का नहीं, सैंकड़ों-हजारों का अनुभव है कि आगन्तुक को प्रसाद दिये बिना अम्मा नहीं जाने देती थीं। देना, देना और देना..... यही उनका स्वभाव था। वह देना भी कैसा कि कोई संकीर्णता नहीं, देने का कोई अभिमान नहीं !

ऐसी सहृदय एवं परोपकारी माँ के यहाँ यदि संत अवतरित न हों तो कहाँ हों?

अनुक्रम

गरीब कन्याओं के विवाह में मदद

पूजनीया माँ का स्वभाव अत्यंत परोपकारी था। गरीबों की वेदना उनके हृदय को पिघलाकर रख देती थी। कभी भी किसी की दुःख-पीड़ा की बात उनके कानों तक पहुँचती तो फिर उसकी सहायता कैसे करनी है – इसी बात का चिंतन माँ के मन में चलता रहता था और जब तक उसे यथा योग्य मदद न मिल जाती, तब तक वे चैन से बैठती तक नहीं।

एक गरीब परिवार में कन्या की शादी थी। जब पूजनीया माँ को इस बात का पता चला तो उन्होंने अत्यंत दक्षता के साथ उसे मदद करने की योजना बना डाली। उस परिवार की आर्थिक स्थिति जानकर लड़की के लिए वस्त्र एवं आभूषण बनवा दिये और शादी के खर्च का बोझ कुछ हलका हो – इस ढंग से आर्थिक मदद भी की और वह भी इस तरह से कि लेने वाले को पता तक न चल पाया कि यह सब पूजनीया माँ के दयालु स्वभाव की देन है। कई गरीब परिवारों को पूजनीया माँ की ओर से कन्या की शादी में यथायोग्य सहायता इस प्रकार से मिलती रहती थी मानों उनकी अपनी बेटी की शादी हो !

अनुक्रम

अम्मा का उत्सव प्रेम

भारतीय संस्कृति के प्रत्येक पर्व त्योहारों को मनाने के लिए अम्मा सभी को प्रोत्साहित किया करती थीं एवं स्वयं भी पर्व के अनुरूप सबको प्रसाद बाँटा करती थीं। जैसे मकर-सक्रांति पर तिल के लड्डू.... आदि। आश्रम के पैसों से दान का बोझ न चढ़े, इसलिए अपने ज्येष्ठ पुत्र जेठानंद से पैसे लेकर पूजनीया अम्मा पर्वों पर प्रसाद बाँटा करती।

सिंधियों का एक विशेष त्योहार है 'तीजड़ी' जो रक्षाबन्धन के तीसरे दिन आता है। उस दिन चाँद के दर्शन पूजन करके ही स्त्रियाँ भोजन करती हैं। अम्मा की सेविका ने भी तीजड़ी का व्रत रखा था। उस वक्त अम्मा हिम्मतनगर में थीं। रात्रि हो चुकी थी। सेविका ने अम्मा से भोजन के लिए प्रार्थना की तो अम्मा बोल

पड़ीं- "तू चाँद देखकर खायेगी। न्याणी (कन्या) भूखी रहे और मैं खाऊँ? नहीं जब चाँद दिखेगा, मैं भी तभी खाऊँगी।"

अम्मा भी चाँद की राह देखते हुए कुर्सी पर बैठी रहीं। जब चाँद दिखा, तब अपनी सेविका के साथ ही अम्मा ने रात्रि-भोजन किया। कैसा मातृहृदय था अम्मा का ! फिर हम उन्हें 'जगज्जननी' न कहें तो क्या कहें !

अनुक्रम

प्रत्येक वस्तु का सदुपयोग होना चाहिए

अम्मा अमदावाद आश्रम में रहती थीं तब की यह बात है। कई लोग आश्रम में दर्शन करने के लिए आते, 'बड़ बादशाह' की परिक्रमा करते एवं वहाँ का जल ले जाते। यदि उन्हें पानी की खाली बोतल न मिलती तो अम्मा के पास आ जाते एवं अम्मा उन्हें बोतल दे देतीं। अम्मा के पास इतनी सारी बोतलें कहाँ से आती थीं, जानते हैं? अम्मा पूरे आश्रम में चक्कर लगातीं तब यत्र-तत्र पड़ी हुई, फेंक दी गयी बोतलें ले आतीं। उसे गर्म पानी एवं साबुन से साफ करके सँभालकर रख देतीं और जरूरतमंदों को दे देतीं।

इसी प्रकार शिविरों के उपरांत कई लोगों की चप्पलें पड़ी होती थीं, उनकी जोड़ी बनाकर रखतीं एवं उन्हें गरीबों में बाँट देतीं।

ऐसा था उनका खराब में से अच्छा बनाने का स्वभाव ! 'मैं विश्वसनीय संत की माँ हूँ....' यह अभिमान तो उन्हें छू तक न सका था। बस, प्रत्येक चीज का सदुपयोग होना चाहिए फिर वह खाने की चीज हो या पहनने-ओढ़ने की।

अनुक्रम

अहं से परे

अम्मा के सेवाकार्य का क्षेत्र जितना विशाल था उतनी ही उनकी निभिमानता भी महान थी। उनके सेवाकार्य का किसी को पता चल जाता तो उन्हें अत्यंत संकोच होता। इसीलिए उन्होंने अपना सेवाक्षेत्र इस प्रकार विकसित किया कि उनके बायें हाथ को पता न चलता कि दायाँ हाथ कौन सी सेवा कर रहा है।

यदि कोई कृतज्ञता व्यक्त करने के लिए उन्हें प्रणाम करने आता तो वे नाराज हो जातीं। अतः उनकी सेविका इस बात की बड़ी सावधानी रखती कि कोई अम्मा को प्रणाम करने न आये।

जिन्होंने जीवन में केवल देना ही सीखा और सिखाया हो, उनसे नमन का ऋण भी सहन नहीं होता था। वे केवल इतना ही कहतीं- "जिसने सब दिया है उस परमात्मा को ही नमन करें।"

उनकी मूक सेवा के आगे मस्तक अपने-आप झुक जाता है। उनकी निरभिमानता, निष्कामता एवं मूक सेवा की भावना युगों-युगों तक लोगों के लिए प्रेरणादायी एवं पथ-प्रदर्शक बनी रहेगी।

अनुक्रम

(संकलित)

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

मीराबाई की गुरुभक्ति

(मीराबाई की दृढ़ भक्ति को कौन नहीं जानता? उन्हीं के कुछ पदों द्वारा उनके जीवन प्रसंग पर प्रकाश डालते हुए पूज्जश्री कह रहे हैं)

भक्तिमती मीराबाई का एक प्रसिद्ध भजन हैः

पग घुँघरू बाँध मीरा नाची रे। लोग कहें मीरा भई रे बावरी,
सास कहे कुलनासी रे। बिष को प्यालो राणाजी भेज्यो,
पीवत मीरा हाँसी रे। मैं तो अपने नारायण की,
आपहि हो गइ दासी रे। मीरा के प्रभु गिरधर नागर,
सहज मिल्या अबिनासी रे।

एक बार संत रैदास जी चितौड़ पधारे थे। रैदासजी रघु चमार के यहाँ जन्में थे। उनकी छोटी जाति थी और उस समय जात-पाँत का बड़ा बोल बाला था। वे नगर से दूर चमारों की बस्ती में रहते थे। राजरानी मीरा को पता चला कि संत रैदासजी महाराज पधारे हैं लेकिन राजरानी के वेश में वहाँ कैसे जायें? मीरा एक मोची महिला का वेश बनाकर चुपचाप रैदासजी के पास चली जाती, उनका सत्संग सुनती, उनके कीर्तन और ध्यान में मग्न हो जाती।

ऐसा करते-करते मीरा का सत्त्वगुण दृढ़ हुआ। मीरा ने सोचाः 'ईश्वर के रास्ते जायें और चोरी छिपे जायें? आखिर कब तक?' फिर मीरा अपने ही वेश में उन चमारों की बस्ती में जाने लगी।

मीरा को उन चमारों की बस्ती में जाते देखकर अड़ोस-पड़ोस में कानाफूसी होने लगी। पूरे मेवाड़ में कुहराम मच गया कि 'ऊँची जाति की, ऊँचे कुल की, राजघराने की मीरा नीची जाति के चमारों की बस्ती में जाकर साधुओं के यहाँ बैठती है, मीरा ऐसी है.... वैसी है.....' ननद उदा ने उसे बहुत समझायाः

"भाभी ! लोग क्या बोलेंगे? तुम राजकुल की रानी और गंदी बस्ती में, चमारों की बस्ती में जाती हो? चमड़े का काम करनेवाले चमार जाति के एक व्यक्ति को गुरु मानती हो? उसको मत्था टेकती हो? उसके हाथ से प्रसाद लेती हो? उसको एकटक देखते-देखते आँखें बंद करके न जाने क्या-क्या सोचती और करती हो? यह ठीक नहीं है। भाभी ! तुम सुधर जाओ।"

सासु नाराज, ससुर नाराज, देवर नाराज, ननद नाराज, कुटुंबीजन नाराज.... उदा ने कहाः

मीरा मान लीजियो म्हारी, तने सखियाँ बरजे सारी।
राणा बरजे, राणी बरजे, बरजे सपरिवारी।
साधन के संग बैठ, बैठ के लाज गँवायी सारी।।

'मीरा ! अब तो मान जा। तुझे मैं समझा रही हूँ, सखियाँ समझा रही हैं, राणा भी कह रहा है, रानी भी कह रही है, सारा परिवार कह रहा है.... फिर भी तू क्यों नहीं समझती है? इन संतों के साथ बैठ-बैठकर तू कुल की सारी लाज गँवा रही है।'

नित प्रति उठ नीच घर जाय कुलको कलंक लगावे।

मीरा मान लीजियो म्हारी तने बरजे सखियाँ सारी।।

तब मीरा ने उत्तर दियाः

तारयो पियर सासरियो तारयो माह्म मौसाली सारी।
मीरा ने अब सदगुरु मिलिया चरणकमल बलिहारी।।

'मैं संतों के पास गयी तो मैंने पीहर का कुल तारा, ससुराल का कुल तारा, मौसाल का और ननिहाल का कुल भी तारा है।'

मीरा की ननद पुनः समझाती हैः

तने बरज बरज मैं हारी भाभी ! मानो बात हमारी।
राणा रोस किया था ऊपर साधो में मत जारी।
कुल को दाग लगे है भाभी ! निंदा होय रही भारी।।
साधो रे संग बन बन भटको लाज गँवायी सारी।
बड़ गर में जनम लियो है नाचो दै दै तारी।
वह पायो हिंदुअन सूरज अब बिदल में कोई धारी।
मीरा गिरधर साध संग तज चलो हमारी लारी।
तने बरज बरज मैं हारी भाभी मानों बात हमारी।।

उदा ने मीरा को बहुत समझाया लेकिन मीरा की श्रद्धा और भक्ति अडिग ही रही। मीरा कहती है कि अब मेरी बात सुनः

मीरा बात नहीं जग छानी समझो सुधर सयानी।
साधु मात पिता हैं मेरे स्वजन, स्नेही, ज्ञानी।।
संत चरण की शरण रैन दिन।
मीरा कहै प्रभु गिरधर नागर संतन हाथ बिकानी।।

'मीरा की बात अब जगत से छिपी नहीं है। साधु ही मेरे माता-पिता हैं, मेरे स्वजन हैं, मेरे स्नेही है, ज्ञानी हैं। मैं तो अब संतों के हाथ बिक गयी हूँ, अब मैं केवल उनकी ही शरण हूँ।'

ननद उदा आदि सब समझा-समझाकर थक गये कि 'मीरा ! तेरे कारण हमारी इज्जत गयी... अब तो हमारी बात मान ले।' लेकिन मीरा भक्ति में दृढ़ रही। लोग समझते हैं कि इज्जत गयी किंतु ईश्वर की भक्ति करने पर आज तक किसी की लाज नहीं गयी है। संत नरसिंह मेहता ने कहा भी हैः

हरि ने भजता हजी, कोईनी लाज जतां नथी जाणी रे....

मूर्ख लोग समझते हैं कि भजन करने से इज्जत चली जाती है वास्तव में ऐसा नहीं है।

राम नाम के शारणे सब यश दीन्हो खोय।
मूरख जाने घटि गयो दिन दिन दूनो होय।।

मीरा की कितनी बदनामी की गयी, मीरा के लिए कितने षड्यंत्र किये गये लेकिन मीरा अडिग रही तो मीरा का यश बढ़ता गया। आज भी लोग बड़े प्रेम से मीरा को याद करते हैं, उनके भजनों को गाकर अथवा सुनकर अपना हृदय पावन करते हैं।

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

अनुक्रम

राजकुमारी मल्लिका बनी तीर्थंकर मल्लियनाथ

जैन धर्म में कुल 24 तीर्थंकर हो चुके हैं। उनमें एक राजकन्या भी तीर्थंकर हो गयी जिसका नाम था मल्लियनाथ।

राजकुमारी मल्लिका इतनी खूबसरत थी कि कई राजकुमार व राजा उसके साथ ब्याह रचाना चाहते थे लेकिन वह किसी को पसंद नहीं करती थी। आखिरकार उन राजकुमारों व राजाओं ने आपस में एक जुट होकर मल्लिका के पिता को किसी युद्ध में हरा कर मल्लिका का अपहरण करने की योजना बनायी।

मल्लिका को इस बात का पता चल गया। उसने राजकुमारों व राजाओं को कहलवाया कि "आप लोग मुझ पर कुर्बान हैं तो मैं भी आप सब पर कुर्बान हूँ। तिथि निश्चित करिये। आप लोग आकर बातचीत करें। मैं आप सबको अपना सौन्दर्य दे दूँगी।"

इधर मल्लिका ने अपने जैसी ही एक सुन्दर मूर्ति बनवायी एवं निश्चित की गयी तिथि से दो-चार दिन पहले से वह अपना भोजन उसमें डाल दिया करती थी। जिल हॉल में राजकुमारी व राजाओं को मुलाकात देनी थी, उसी हॉल में एक ओर वह मूर्ति रखवा दी गयी।

निश्चित तिथि पर सारे राजा व राजकुमार आ गये। मूर्ति इतनी हूबहू थी कि उसकी ओर देखकर राजकुमार विचार ही कर रहे थे कि 'अब बोलेगी...अब बोलेगी....' इतने में मल्लिका स्वयं आयी तो सारे राजा व राजकुमार उसे देखकर दंग रहे गये कि 'वास्तविक मल्लिका हमारे सामने बैठी है तो यह कौन है !'

मल्लिका बोलीः "यह प्रतिमा है। मुझे यही विश्वास था कि आप सब इसको ही सच्ची मानेंगेऔर सचमुच में मैंने इसमें सच्चाई छुपाकर रखी है। आपको जो सौन्दर्य चाहिए वह मैंने इसमें छुपाकर रखा है।"

यह कहकर ज्यों ही मूर्ति का ढक्कन खोला गया, त्यों ही सारा कक्ष दुर्गन्ध से भर गया। पिछले चार-पाँच दिन से जो भोजन उसमें डाला गया था उसके सड़ जाने से ऐसी भयंकर बदबू निकल रही थी कि सब 'छिः-छिः...' कर उठे।

तब मल्लिका ने वहाँ आये हुए सभी राजाओं व राजकुमारों को सम्बोधित करते हुए कहाः "भाइयो ! जिस अन्न, जल, दूध, फल, सब्जी इत्यादि को खाकर यह शरीर सुन्दर दिखता है, मैंने वे ही खाद्य-सामग्रियाँ चार-पाँच दिनों से इसमें डाल रखीं थीं। अब ये सड़ कर दुर्गन्ध पैदा कर रही हैं। दुर्गन्ध पैदा करने वाले इन खाद्यान्नों से बनी हुई चमड़ी पर आप इतने फिदा हो रहे हो तो इस अन्न को रक्त बना कर सौन्दर्य देने वाला

यह आत्मा कितना सुन्दर होगा ! भाइयो ! अगर आप इसका ख्याल रखते तो आप भी इस चमड़ी के सौन्दर्य का आकर्षण छोड़कर उस परमात्मा के सौन्दर्य की तरफ चल पड़ते।"

मल्लिका की सारगर्भित बातें सुनकर कुछ राजा एवं राजकुमार भिक्षुक हो गये और कुछ ने काम-विकार से अपना पिण्ड छुड़ाने का संकल्प किया। उधर मल्लिका संतशरण में पहुँच गयी, त्याग और तप से अपनी आत्मा को पाकर मल्लियनाथ तीर्थंकर बन गयी। अपना तन-मन परमात्मा को सौंपकर वह भी परमात्ममय हो गयी।

आज भी मल्लियनाथ जैन धर्म के प्रसिद्ध उन्नीसवें तीर्थंकर के नाम से सम्मानित होकर पूजी जा रही हैं।

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

अनुक्रम

दुर्गादास की वीर जननी

सन् 1634 के फरवरी मास की घटना हैः जोधपुर नरेश का सेनापति आसकरण जैसलमेर जिले से गुजर रहा था। जेमल गाँव में उसने देखा कि गाँव के लोग डर के मारे भागदौड़ मचा रहे हैं और पुकार रहे हैं- 'हाय कष्ट, हाय मुसीबत, बचाओ.... बचाओ....'

आसकरण ने सोचा कि 'कहीं मुगलों ने गाँव को लूटना तो आरंभ नहीं कर दिया अथवा किसी की बहू-बेटी की इज्जत तो नहीं लूटी जा रही है?' गाँव के लोगों की चीख-पुकार सुनकर आसकरण वहीं रुक गया।

इतने में उसने देखा कि दो भैंसे आपस में लड़ रही हैं। उन भैंसों ने ही पूरे गाँव में भगदड़ मचा रखी है लेकिन किसी गाँव वाले की हिम्मत नही हो रही है कि पास में जाय। सारे लोग चीख रहे थे। मैंने देखी है भैंसों की लड़ाई, बड़ी भयंकर होती है।

इतने में एक कन्या आयी। उसके सिर पर पानी के तीन घड़े थे। उस कन्या ने सब पर नजर डाली और तीनों घड़े नीचे उतार दिये। अपनी साड़ी का पल्लू कसकर बाँधा और जैसे शेर हाथी पर टूट पड़ता है ऐसे ही उन भैंसों पर टूट पड़ी। एक भैंस का सींग पकड़कर उसकी गरदन मरोड़ने लगी। भैंस उसके आगे रँभाने लगी लेकिन उसने भैंस को गिरा दिया। दूसरी भैंस पूँछ दबाकर भाग गयी।

सेनापति आसकरण तो देखता ही रह गया कि इतनी कोमल और सुन्दर दिखने वाली कन्या में गजब की शक्ति है ! पूरे गाँव की रक्षा के लिए एक कन्या ने कमर कसी और लड़ती हुई भैंस को गिरा दिया। जरूर यह दुर्गा की उपासना करती होगी।

उस कन्या की गजब की सूझबूझ और शक्ति देखकर सेनापति आसकरण ने उसके पिता से उसका हाथ माँग लिया। कन्या का पिता गरीब था और एक सेनापति हाथ माँग रहा है, पिता के लिए इससे बढ़कर खुशी की बात और क्या हो सकती थी? पिता ने कन्यादान कर दिया। इसी कन्या ने आगे चलकर वीर दुर्गादास जैसे पुत्ररत्न को जन्म दिया।

एक कन्या ने पूरे जेमल गाँव को सुरक्षित कर दिया। साथ ही हजारों बहू-बेटियों को यह सबक सिखा दिया कि भयजनक परिस्थितियों के आगे कभी घुटने न टेको। लुच्चे, लफंगों के आगे कभी घुटने न टेको। श्रेष्ठ, सदाचारी, संत-महात्मा से, भगवान और जगदंबा से अपनी शक्तियों को जगाने की योगविद्या सीख लो। अपनी छिपी हुई शक्तियों को जाग्रत करो एवं अपनी संतानों में भी वीरता, भगवद् भक्ति एवं ज्ञान के सुन्दर संस्कारों का सिंचन करके उन्हे देश का एक उत्तम नागरिक बनाओ।

राजस्थान में तो आज भी बच्चों को लोरी गाकर सुनाते हैं-

सालवा जननी एहा पुत्त जण जे हा दुर्गादास।

अपने बच्चों को साहसी, उद्यमी, धैर्यवान, बुद्धिमान और शक्तिशाली बनाने का प्रयास सभी माता-पिता को करना चाहिए। सभी शिक्षको एवं आचार्यों को भी बच्चों में संयम-सदाचार बढ़े तथा उनका स्वास्थ्य मजबूत बने इस हेतु आश्रम से प्रकाशित 'युवाधन सुरक्षा' एवं 'योगासन' पुस्तकों का पठन-पाठन करवाना चाहिए, ताकि भारत पुनः विश्वगुरु की पदवी पर आसीन हो सके।

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

अनुक्रम

कर्मनिष्ठ श्यामो

यतः प्रवृत्तिर्भूतानां येन सर्वमिदं ततम्।
स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दति मानवः।।

'जिस परमात्मा से सर्वभूतों की उत्पत्ति हुई है और जिससे यह सर्व जगत व्याप्त है उस परमेश्वर के अपने स्वाभाविक कर्मों द्वारा पूजकर मनुष्य परम सिद्धि को प्राप्त होता है।'

(श्रीमदभगवदगीताः 18.46)

अपने स्वाभाविक कर्मरूपी पुष्पों द्वारा सर्वव्यापक परमात्मा की पूजा करके कोई भी मनुष्य परम सिद्धि को प्राप्त हो सकता है, फिर भले ही वह कोई बड़ा सेठ हो या छोटा-सा गरीब व्यक्ति।

श्यामो नामक एक 13 वर्षीया लड़की की शादी हो गयी। साल भर बाद उसके पति की मृत्यु हो गयी और वह लड़की 14 वर्ष की छोटी सी उम्र में ही विधवा हो गयी। श्यामो ने सोचा कि 'अपने जीवन को आलसी, प्रमादी या विलासी बनाना – यह समझदारी नहीं है।' अतः उसने दूसरी शादी न करके पवित्र जीवन जीने का निश्चय किया और इसके लिए अपने माता-पिता को भी राजी कर लिया। उसके माता-पिता महागरीब थे।

श्यामो सुबह जल्दी उठकर पाँच सेर आटा पीसती और उसमें से कुछ कमाई कर लेती। फिर नहा-धोकर थोड़ा पूजा-पाठ आदि करके पुनः सूत कातने बैठ जाती। इस प्रकार उसने अपने को कर्म में लगाये रखा और जो काम करती उसे बड़ी सावधानी एवं तत्परता से करती। ऐसा करने से उसे नींद भी बढ़िया आती और थोड़ी देर पूजा पाठ करती तो उसमें भी मन बड़े मजे से लग जाता। ऐसा करते-करते श्यामो ने देखा कि यहाँ से जो यात्री आते-जाते हैं, उन्हें बड़ी प्यास लगती। श्यामो ने आटा पीसकर, सूत कातकर, किसी के घर की रसोई

करके अपना तो पेट पाला ही, साथ ही करकसर करके जो धन एकत्रित किया था, अपने पूरे जीवन की उस संपत्ति को लगा दिया। पथिकों के लिए कुआँ बनवाने में। मुंगेर-भागलपुर रोड पर स्थित वही 'पक्का कुआँ', जिसे 'पिसजहारी कुआँ' भी कहते हैं, आज भी श्यामो की कर्मठता, त्याग, तपस्या और परोपकारिता की खबर दे रहा है।

परिस्थितियाँ चाहे कैसी भी आयें किंतु इन्सान उनसे हताश-निराश न हो एवं तत्परतापूर्वक शुभ कर्म करता रहे तो फिर उसके सेवाकार्य भी पूजा पाठ हो जाते हैं। जो भगवदीय सुख, भगवत्संतोष, भगवत्शांति भक्त या योगी के हृदय में भक्ति भाव या योग से आते हैं, वे ही भगवत्प्रीत्यर्थ सेवा करने वाले के हृदय में प्रकट होते हैं।

14 वर्ष की उम्र में ही विधवा हुई श्यामो ने दुबारा शादी न करके अपने जीवन को पुनः विलासिता और विकारों में गरकाब न किया वरन् पवित्रता, संयम एवं सदाचार का पालन करते हुए तत्परता से कर्म करती रही तो आज उसका पंचभौतिक शरीर भले ही धरती पर नहीं है, पर उसकी कर्मठता, परोपकारिता एवं त्याग की यशोगाथा तो आज भी गायी जा रही है।

काश ! लड़ने-झगड़ने और कलह करने वाले लोग उससे प्रेरणा पायें ! घर, कुटुम्ब व समाज में सेवा और स्नेह की सरिता बहायें तो हमारा भारत और अधिक उन्नत होगा। गाँव-गाँव को गुरुकुल बनायें.... घर-घर को गुरुकुल बनायें....

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

अनुक्रम

शक्तिस्वरूपा माँ आनंदमयी

संयम में अदभुत सामर्थ्य है। जिसके जीवन में संयम है, जिसके जीवन में ईश्वरोपासना है। वह सहज ही में महान हो जाता है। आनंदमयी माँ का जब विवाह हुआ तब उनका व्यक्तित्व अत्यंत आभासंपन्न थी। शादी के बाद उनके पति उन्हें संसार-व्यवहार में ले जाने का प्रयास करते रहते थे किंतु आनंदमयी माँ उन्हें संयम और सत्संग की महिमा सुनाकर, उनकी थोड़ी सेवा करके, विकारों से उनका मन हटा देती थीं।

इस प्रकार कई दिन बीते, हफ्ते बीते, कई महीने बीत गये लेकिन आनंदमयी माँ ने अपने पति को विकारों में गिरने नहीं दिया।

आखिरकार कई महीनों के पश्चात् एक दिन उनके पति ने कहाः "तुमने मुझसे शादी की है फिर भी क्यों मुझे इतना दूर दूर रखती हो?"

तब आनंदमयी माँ ने जवाब दियाः "शादी तो जरूर की है लेकिन शादी का वास्तविक मतलब तो इस प्रकार हैः शाद अर्थात् खुशी। वास्तविक खुशी प्राप्त करने के लिए पति-पत्नी एक दूसरे के सहायक बनें न कि शोषक। काम-विकार में गिरना यह कोई शादी का फल नहीं है।"

इस प्रकार अनेक युक्तियों और अत्यंत विनम्रता से उन्होंने अपने पति को समझा दिया। वे संसार के कीचड़ में न गिरते हुए भी अपने पति की बहुत अच्छी तरह से सेवा करती थीं। पति नौकरी करके घर आते तो गर्म-गर्म भोजन बनाकर खिलातीं।

वे घर भी ध्यानाभ्यास किया करती थीं। कभी-कभी स्टोव पर दाल चढ़ाकर, छत पर खुले आकाश में चंद्रमा की ओर त्राटक करते-करते ध्यानस्थ हो जातीं। इतनी ध्यानमग्न हो जातीं कि स्टोव पर रखी हुई दाल जलकर कोयला हो जाती। घर के लोग डाँटते तो चुपचाप अपनी भूल स्वीकार कर लेतीं लेकिन अन्दर से तो समझती कि 'मैं कोई गलत मार्ग पर तो नहीं जा रही हूँ...' इस प्रकार उनके ध्यान-भजन का क्रम चालू ही रहा। घर में रहते हुए ही उनके पास एकाग्रता का कुछ सामर्थ्य आ गया।

एक रात्रि को वे उठीं और अपने पति को भी उठाया। फिर स्वयं महाकाली का चिंतन करके अपने पति को आदेश दियाः "महाकाली की पूजा करो।" उनके पति ने उनका पूजन कर दिया। आनंदमयी माँ में उन्हें महाकाली के दर्शन होने लगे। उन्होंने आनंदमयी माँ को प्रणाम किया।

तब आनंदमयी माँ बोलीं- अब महाकाली को तो माँ की नजर से ही देखना है न?"

पतिः "यह क्या हो गया।"

आनंदमयी माँ- "तुम्हारा कल्याण हो गया।"

कहते हैं कि उन्होंने अपने पति को दीक्षा दे दी और साधु बनाकर उत्तरकाशी के आश्रम में भेज दिया।

कैसी दिव्य नारी रही होंगी माँ आनंदमयी ! उन्होंन अपने पति को भी परमात्मा के रंग में रँग दिया। जो संसार की माँग करता था उसे भगवान की माँग का अधिकारी बना दिया। इस भारतभूमि में ऐसी भी अनेक सन्नारियाँ हो गयीं ! कुछ वर्ष पूर्व ही आनंदमयी माँ ने अपना शरीर त्यागा है। हरिद्वार में एक करोड़ बीस लाख रुपये खर्च करके उनकी समाधि बनवायी गयी है।

ऐसी तो अनेकों बंगाली लड़कियाँ थीं, जिन्होंने शादी की, पुत्रों को जन्म दिया, पढ़ाया-लिखाया और मर गयीं। शादी करके संसार व्यवहार चलाओ उसकी ना नहीं है, लेकिन पति को विकारों में गिराना या पत्नी के जीवन को विकारो में खत्म करना, यह एक-दूसरे के मित्र के रूप में एक-दूसरे के शत्रु का कार्य है। संयम से संतति को जन्म दिया यह अलग बात है। किंतु विषय-विकारों में फँस मरने के लिए थोड़े ही शादी की जाती है।

बुद्धिमान नारी वही है जो अपने पति को ब्रह्मचर्य पालन में मदद करे और बुद्धिमान पति वही है जो विषय विकारों से अपनी पत्नी का मन हटाकर निर्विकारी नारायण के ध्यान में लगाये। इस रूप में पति पत्नी दोनों सही अर्थों में एक दूसरे के पोषक होते हैं, सहयोगी होते हैं। फिर उनके घर में जो बालक जन्म लेते हैं वे भी ध्रुव, गौरांग, रमण महर्षि, रामकृष्ण परमहंस या विवेकानंद जैसे बन सकते हैं।

माँ आनंदमयी को संतों से बड़ा प्रेम था। वे भले प्रधानमंत्री से पूजित होती थीं किंतु स्वयं संतों को पूजकर आनंदित होती थीं। श्री अखण्डानंदजी महाराज सत्संग करते तो वे उनके चरणों में बैठकर सत्संग सुनती। एक बार सत्संग की पूर्णाहूति पर माँ आनंदमयी सिर पर थाल लेकर गयीं। उस थाल में चाँदी का शिवलिंग था। वह थाल अखण्डानंदजी को देते हुए बोलीं-

"बाबाजी ! आपने कथा सुनायी है, दक्षिणा ले लीजिए।"

माँ- "बाबाजी और भी दक्षिणा ले लो।"

अखण्डानंदजीः "माँ ! और क्या दे रही हो?"

माँ- "बाबाजी ! दक्षिणा में मुझे ले लो न !"

अखण्डानंदजी ने हाथ पकड़ लिया एवं कहाः

"ऐसी माँ को कौन छोड़े? दक्षिणा में आ गयी मेरी माँ।"

कैसी है भारतीय संस्कृति !

हरिबाबा बड़े उच्चकोटि के संत थे एवं माँ आनंदमयी के समकालीन थे। वे एक बार बहुत बीमार पड़ गये। डॉक्टर ने लिखा हैः "उनका स्वास्थ्य काफी लड़खड़ा गया और मुझे उनकी सेवा का सौभाग्य मिला। उन्हें रक्तचाप भी था और हृदय की तकलीफ भी थी। उनका कष्ट इतना बढ़ गया था कि नाड़ी भी हाथ में नहीं आ रही थी। मैंने माँ को फोन किया कि 'माँ ! अब बाबाजी हमारे बीच नहीं रहेंगे। 5-10 मिनट के ही मेहमान हैं।' माँ ने कहाः 'नहीं, नहीं। तुम 'श्रीहनुमानचालीसा' का पाठ कराओ मैं आती हूँ।'

मैंने सोचा कि माँ आकर क्या करेंगी? माँ को आते-आते आधा घण्टा लगेगा। 'श्रीहनुमानचालीसा' का पाठ शुरु कराया गया और चिकित्सा विज्ञान के अनुसार हरिबाबा पाँच-सात मिनट में ही चल बसे। मैंने सारा परीक्षण किया। उनकी आँखों की पुतलियाँ देखीं। पल्स (नाड़ी की धड़कन) देखी। इसके बाद 'श्रीहनुमानचालीसा' का पाठ करने वालों के आगेवान से कहा कि अब बाबाजी की विदाई के लिए सामान इकट्ठा करें। मैं अब जाता हूँ।

घड़ी भर माँ का इंतजार किया। माँ आयीं बाबा से मिलने। हमने माँ से कहाः "माँ ! बाबाजी नहीं रहे... चले गये।"

माः "नहीं,नहीं.... चले कैसे गये? मैं मिलूँगी, बात करूँगी।"

मैं- "माँ ! बाबा जी चले गये हैं।"

माँ- "नहीं। मैं बात करूँगी।"

बाबाजी का शव जिस कमरे में था, माँ उस कमरे में गयीं। अंदर से कुण्डा बंद कर दिया। मैं सोचने लगा कि कई डिग्रियाँ हैं मेरे पास। मैंने भी कई केस देखे हैं, कई अनुभवों से गुजरा हूँ। धूप में बदले सफेद नहीं किये हैं, अब माँ दरवाजा बंद करके बाबाजी से क्या बात करेंगी?

मैं घड़ी देखता रहा। 45 मिनट हुए। माँ ने कुण्डा खोला एवं हँसती हुई आयीं। उन्होंने कहाः "बाबाजी मेरा आग्रह मान गये हैं। वे अभी नहीं जायेंगे।"

मुझे एक धक्का सा लगा ! 'वे अभी नहीं जायेंगे? यह आनंदमयी माँ जैसी हस्ती कह रही हैं ! वे तो जा चुके हैं !

मैं- "माँ ! बाबाजी तो चले गये हैं।"

माँ- "नहीं, नहीं.... उन्होंने मेरा आग्रह मान लिया है। अभी नहीं जायेंगे।"

मैं चकित होकर कमरे में गया तो बाबाजी तकिये को टेका देकर बैठे-बैठे हंस रहे थे। मेरा विज्ञान वहाँ तौबा पुकार गया ! मेरा अहं तौबा पुकार गया !

बाबाजी कुछ समय तक दिल्ली में रहे। चार महीने बीते, फिर बोलेः "मुझे काशी जाना है।"

मैंने कहाः "बाबाजी ! आपकी तबीयत काशी जाने के लिए ट्रेन में बैठने के काबिल नहीं है। आप नहीं जा सकते।"

बाबाजीः "नहीं... हमें जाना है। हमारा समय हो गया।"

माँ ने कहाः "डॉक्टर ! इन्हें रोको मत। इन्हें मैंने आग्रह करके चार महीने तक के लिए ही रोका था। इन्होंने अपना वचन निभाया है। अब इन्हें मत रोको।"

बाबाजी गये काशी। स्टेशन से उतरे और अपने निवास पर रात के दो बजे पहुँचे। प्रभात की वेला में वे अपना नश्वर देह छोड़कर सदा के लिए अपने शाश्वत रूप में व्याप गये।"

'बाबाजी व्याप गये' ये शब्द डॉक्टर ने नहीं लिखे, 'नश्वर' आदि शब्द नहीं लिखे लेकिन मैं जिस बाबाजी के विषय में कह रहा हूँ वे बाबाजी इतनी ऊँचाईवाले रहे होंगे।

कैसी है महिमा हमारे महापुरुषों की ! आग्रह करके बाबा जी तक को चार महीने के लिए रोक लिया माँ आनंदमयी ने ! कैसी दिव्यता रही है हमारे भारत की सन्नारियों की !

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

अनुक्रम

भौतिक जगत में भाप की शक्ति, विद्युत की शक्ति, गुरुत्वाकर्षण की शक्ति बड़ी मानी जाती है मगर आत्मबल उन सब शक्तियों का संचालक बल है। आत्मबल के सान्निध्य में आकर पंगु प्रारब्ध को पैर आ जाते हैं, दैव की दीनता पलायन हो जाती है, प्रतिकूल परिस्थितियाँ अनुकूल जो जाती हैं। आत्मबल सर्व सिद्धियों का पिता है।

नारी शरीर मिलने से अपने को अबला मानती हो? लघुताग्रंथि में उलझकर परिस्थितियों में पीसी जाती हो? अपना जीवन-दीन बना बैठी हो? तो अपने भीतर सुषुप्त आत्मबल को जगाओ। शरीर चाहे स्त्री का हो चाहे पुरुष का। प्रकृति के साम्राज्य में जो जीते हैं, अपने मन के गुलाम होकर जो जीते हैं, वे स्त्री हैं और प्रकृति के बन्धन से पार अपने आत्मस्वरूप की पहचान जिन्होंने कर ली, अपने मन की गुलामी की बेड़ियाँ तोड़कर जिन्होंने फेंक दी हैं वे पुरुष हैं। स्त्री या पुरुष शरीर व मान्यताएँ होती हैं, तुम तो शरीर से पार निर्मल आत्मा हो।

जागो, उठो.... अपने भीतर सोये हुए आत्मबल को जगाओ। सर्वदेश, सर्वकाल में सर्वोत्तम आत्मबल को अर्जित करो। आत्मा-परमात्मा में अथाह सामर्थ्य है। अपने को दीन-हीन अबला मान बैठी तो जगत में ऐसी कोई सत्ता नहीं है जो तुम्हें ऊपर उठा सके। अपने आत्मस्वरूप में प्रतिष्ठित हो गयी तो तीनों लोकों में भी ऐसी कोई हस्ती नहीं जो तुम्हें दबा सके।

परम पूज्य संत श्री आसारामजी बापू

अभाव का ही अभाव

कश्मीर में तर्करत्न, न्यायाचार्य पंडित रहते थे। उन्होंने चार पुस्तकों की रचना की थी, जिनसे बड़े-बड़े विद्वान तक प्रभावित थे। इतनी विद्वता होते हुए भी उनका जीवन अत्यंत सीधा-सादा एवं सरल था। उनकी पत्नी भी उन्हीं के समान सरल एवं सीधा-सादा जीवन-यापन करने वाली साध्वी थीं।

उनके पास संपत्ति के नाम पर एक चटाई, लेखनी कागज एवं कुछ पुस्तकें तथा दो जोड़ी वस्त्र थे। वे कभी किसी से कुछ माँगते न थे और न ही दान का खाते थे। उनकी पत्नी जंगल से मूँज काटकर लातीं, उससे रस्सी बनातीं और उसे बेचकर अनाज-सब्जी आदि खरीद लातीं। फिर भोजन बना कर पति को प्रेम से खिलातीं और घर के अन्य कामकाज करतीं। पति को तो यह पता भी न रहता कि घर में कुछ है या नहीं। वे तो बस, अपने अध्ययन-मनन में मस्त रहते।

ऐसी महान साध्वी स्त्रियाँ भी इस भारतभूमि में हो चुकी हैं। धीरे-धीरे पंडित जी की ख्याति अन्य देशों में भी फैलने लगी। अन्य देशों के विद्वान लोग आकर उनके देख कश्मीर के राजा शंकरदेव से कहने लगेः

"राजन ! जिस देश में विद्वान, धर्मात्मा, पवित्रात्मा दुःख पाते हैं, उस देश के राजा को पाप लगता है। आपके देश में भी एक ऐसे पवित्रात्मा विद्वान हैं, जिनके पास खाने पीने का ठिकाना नहीं है, फिर भी आप उनकी कोई सँभाल नहीं रखते?"

यह सुनकर राजा स्वयं पंडितजी की कुटिया में पहुँच गया। हाथ जोड़कर उनसे प्रार्थना करने लगाः "भगवन् ! आपके पास कोई कमी तो नहीं है?"

पंडितजीः "मैंने जो चार ग्रन्थ लिखे हैं, उनमें मुझे तो कोई कमी नहीं दिखती। आपको कोई कमी लगती हो तो बताओ।"

राजाः "भगवन् ! मैं शब्दों की, ग्रन्थ की कमी नहीं पूछता हूँ, वरन् अन्न जल वस्त्र आदि घर के व्यवहार की चीजों की कमी पूछ रहा हूँ।"

पंडितजीः "उसका मुझे कोई पता नहीं है। मेरा तो केवल एक प्रभु से नाता है। उसी के स्मरण में इतना तल्लीन रहता हूँ कि मुझे घर का कुछ पता ही नहीं रहता।"

जो भगवान की स्मृति में तल्लीन रहता है, उसके द्वार पर सम्राट स्वयं आ जाते हैं, फिर भी उसे कोई परवाह नहीं रहती।

राजा ने खूब विनम्र भाव से पुनः प्रार्थना की एवं कहाः "भगवन् ! जिस देश में पवित्रात्मा दुःखी होते हैं, उस देश का राजा पाप का भागी होता है। अतः आप बताने की कृपा करें कि मैं आपकी सेवा करूँ?"

जैसे ही पंडितजी ने ये वचन सुने कि तुरंत अपनी चटाई लपेटकर बगल में दबा ली एवं पुस्तकों की पोटली बाँधकर उसे भी उठाते हुए अपनी पत्नी से कहाः "चलो देवी ! यदि अपने यहाँ रहने से इन राजा को पाप का भागी होना पड़ता हो, इस राज्य को लाँछन लगता हो तो हम लोग कहीं ओर चलें। अपने रहने से किसी को दुःख हो, यह तो ठीक नहीं है।"

यह सुनकर राजा उनके चरणों में गिर पड़ा एवं बोलाः "भगवन् ! मेरा यह आशय न था, वरन् मैं तो केवल सेवा करना चाहता था।"

फिर राजा पंडित जी से आज्ञा लेकर उनकी धर्मपत्नी के समक्ष जाकर प्रणाम करते हुए बोलाः "माँ ! आपके यहाँ अन्न-जल-वस्त्रादि किसी भी चीज की कमी हो तो आज्ञा करें, ताकि मैं आप लोगों की कुछ सेवा कर सकूँ।"

पंडित जी की धर्मपत्नी भी कोई साधारण नारी तो थीं नहीं। वे भगवत्परायण नारी थीं। सच पूछो तो नारी के रूप में मानों साक्षात् नारायणी ही थीं। वे बोलीं- "नदियाँ जल दे रही हैं, सूर्य प्रकाश दे रहा है, प्राणों के लिए आवश्यक पवन बह ही रही है एवं सबको सत्ता देनेवाला वह सर्वसत्ताधीश परमात्मा हमारे साथ ही है, फिर कमी किस बात की? राजन ! शाम तक का आटा पड़ा है, लक़डियाँ भी दो दिन जल सकें, इतनी हैं। मिर्च-मसाला भी कल तक का है। पक्षियों के पास तो शाम तक का भी ठिकाना नहीं होता, फिर भी वे आनंद से जी लेते हैं। मेरे पास तो कल तक का है। राजन ! मेरे वस्त्र अभी इतने फटे नहीं कि मैं उन्हें पहन न सकूँ? बिछाने के लिए चटाई एवं ओढ़ने के लिए चादर भी है।.... और मैं क्या कहूँ? मेरी चूड़ी अमर है और सबमें बसे हुए मेरे पति का तत्त्व मुझमें भी धड़क रहा है। मुझे अभाव किस बात का, बेटा !"

पंडितजी की धर्मपत्नी की दिव्यता को देखकर राजा की भी गदगद हो उठा एवं चरणों में गिरकर बोलाः "माँ ! आप गृहिणी हैं कि तपस्विनी, यह कहना मुश्किल है। माँ ! मैं बड़भागी हूँ कि आपके दर्शन का सौभाग्य पा सका। आपके चरणों में मेरे कोटि-कोटि प्रणाम हैं !"

जो लोग परमात्मा का निरंतर स्मरण करते रहते हैं, उन्हें वेश बदलने की फुर्सत ही नहीं होती, जरूरत भी नहीं होती।

जो परमात्मा के चिंतन में तल्लीन हैं, उन्हें संसार के अभाव का पता ही नहीं होता। कोई सम्राट आकर उनका आदर करे तो उन्हें हर्ष नहीं होता, उसके प्रति आकर्षण नहीं होता। ऐसे ही यदि कोई मूर्ख आकर अनादर कर दे तो शोक नहीं होता, क्योंकि हर्ष-शोक तो वृत्ति से भासते हैं। जिनकी परमात्मा के शरण चली गयी है, उन्हें हर्ष-शोक, सुख-दुःख के प्रसंग सत्य ही नहीं भासते तो डिगा कैसे सकते हैं। उन्हें अभाव कैसे डिगा सकता है? उनके आगे अभाव का भी अभाव हो जाता है।

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

अनुक्रम

माँ अंजना का सामर्थ्य

माँ अंजना ने तप करके हनुमान जैसे पुत्र को पाया था। वे हनुमानजी में बाल्यकाल से ही भगवदभक्ति के संस्कार डाला करती थीं, जिसके फलस्वरूप हनुमानजी में श्रीराम-भक्ति का प्रादुर्भाव हो गया। आगे चलकर वे प्रभु के अनन्य सेवक के रूप में प्रख्यात हुए – यह तो सभी जानते हैं।

भगवान श्री राम रावण का वध करके माँ सीता, लक्ष्मण, हनुमान, विभीषण, जांबवत आदि के साथ अयोध्या लौट रहे थे। मार्ग में हनुमान जी ने श्रीरामजी से अपनी माँ के दर्शन की आज्ञा माँगी कि "प्रभु ! अगर आप आज्ञा दें तो मैं माता जी के चरणों में मत्था टेक आऊँ।"

श्रीराम ने कहाः "हनुमान ! क्या वे केवल तुम्हारी ही माता हैं? क्या वे मेरी और लखन की माता नहीं हैं? चलो, हम भी चलते हैं।"

पुष्पक विमान किष्किंधा से अयोध्या जाते-जाते कांचनगिरि की ओर चल पड़ा और कांचनगिरी पर्वत पर उतरा। श्रीरामजी स्वयं सबके साथ माँ अंजना के दर्शन के लिए गये।

हनुमानजी ने दौड़कर गदगद कंठ एवं अश्रुपूरित नेत्रों से माँ को प्रणाम किया। वर्षों बाद पुत्र को अपने पास पाकर माँ अंजना अत्यंत हर्षित होकर हनुमान का मस्तक सहलाने लगीं।

माँ का हृदय कितना बरसता है यह बेटे को कम ही पता होता है। माता-पिता का दिल तो माता-पिता ही जानें !

माँ अंजना ने पुत्र को हृदय से लगा लिया। हनुमान जी ने माँ को अपने साथ ये लोगों का परिचय दिया कि 'माँ ! ये श्रीरामचन्द्रजी हैं, ये माँ सीताजी हैं और ये लखन भैया हैं। ये जांबवंत जी हैं, ये माँ सीताजी हैं और ये लखन भैया हैं। ये जांबवत जी हैं.... आदि आदि।

भगवान श्रीराम को देखकर माँ अंजना उन्हें प्रणाम करने जा ही रही थीं कि श्रीरामजी ने कहाः "माँ ! मैं दशरथपुत्र राम आपको प्रणाम करता हूँ।"

माँ सीता व लक्ष्मण सहित बाकी के सब लोगों ने भी उनको प्रणाम किया। माँ अंजना का हृदय भर आया। उन्होंने गदगद कंठ एवं सजल नेत्रों से हनुमान जी से कहाः "बेटा हनुमान ! आज मेरा जन्म सफल हुआ। मेरा माँ कहलाना सफल हुआ। मेरा दूध तूने सार्थक किया। बेटा ! लोग कहते हैं कि माँ के ऋण से बेटा कभी उऋण नहीं हो सकता लेकिन मेरे हनुमान ! तू मेरे ऋण से उऋण हो गया। तू तो मुझे माँ कहता ही है किंतु आज मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम ने भी मुझे 'माँ' कहा है ! अब मैं केवल तुम्हारी ही माँ नहीं, श्रीराम, लखन, शत्रुघ्न और भरत की भी माँ हो गयी, इन असंख्य पराक्रमी वानर-भालुओं की भी माँ हो गयी। मेरी कोख सार्थक हो गयी। पुत्र हो तो तेरे जैसा हो जिसने अपना सर्वस्व भगवान के चरणों में समर्पित कर दिया और जिसके कारण स्वयं प्रभु ने मेरे यहाँ पधार कर मुझे कृतार्थ किया।"

हनुमानजी ने फिर से अपनी माँ के श्रीचरणों में मत्था टेका और हाथ जोड़ते हुए कहाः "माँ ! प्रभु जी का राज्याभिषेक होनेवाला था परंतु मंथरा ने कैकेयी को उलटी सलाह दी, जिससे प्रभुजी को 14 वर्ष का बनवास एवं भरत को राजगद्दी मिली राजगद्दी अस्वीकार करके भरतजी उसे श्रीरामजी को लौटाने के लिए आये लेकिन पिता के मनोरथ को सिद्ध करने के लिए भाव से प्रभु अयोध्या वापस न लौटे।

माँ ! दुष्ट रावण की बहन शूर्पणखा प्रभुजी से विवाह के लिए आग्रह करने लगी किंतु प्रभुजी उसकी बातों में नहीं आये, लखन जी भी नहीं आये और लखन जी ने शूर्पणखा के नाक कान काटकर उसे दे दिये। अपनी बहन के अपमान का बदला लेने के लिए दुष्ट रावण ब्राह्मण का रूप लेकर माँ सीता को हरकर ले गया।

करूणानिधान प्रभु की आज्ञा पाकर मैं लंका गया और अशोक वाटिका में बैठी हुई माँ सीता का पता लगाया तथा उनकी खबर प्रभु को दी। फिर प्रभु ने समुद्र पर पुल बँधवाया और वानर-भालुओं को साथ लेकर राक्षसों का वध किया और विभीषण को लंका का राज्य देकर प्रभु माँ सीता एवं लखन के साथ अयोध्या पधार रहे हैं।"

अचानक माँ अंजना कोपायमान हो उठीं। उन्होंने हनुमान को धक्का मार दिया और क्रोधसहित कहाः "हट जा, मेरे सामने। तूने व्यर्थ ही मेरी कोख से जन्म लिया। मैंने तुझे व्यर्थ ही अपना दूध पिलाया। तूने मेरे दूध को लजाया है। तू मुझे मुँह दिखाने क्यों आया?"

श्रीराम, लखन भैयासहित अन्य सभी आश्चर्यचकति हो उठे कि माँ को अचानक क्या हो गया? वे सहसा कुपित क्यों हो उठीं? अभी-अभी ही तो कह रही थीं कि 'मेरे पुत्र के कारण मेरी कोख पावन हो गयी.... इसके कारण मुझे प्रभु के दर्शन हो गये....' और सहसा इन्हें क्या हो गया जो कहने लगीं कि 'तूने मेरा दूध लजाया है।'

हनुमानजी हाथ जोड़े चुपचाप माता की ओर देख रहे थे। **सर्वतीर्थमयी माता सर्वदेवमयो पिता....** माता सब तीर्थों की प्रतिनिधि है। माता भले बेटे को जरा रोक-टोक दे लेकिन बेटे को चाहिए कि नतमस्तक होकर माँ के कड़वे वचन भी सुन लें। हनुमान जी के जीवन से यह शिक्षा अगर आज के बेटे-बेटियाँ ले लें तो वे कितने महान हो सकते हैं !

माँ की इतनी बातें सुनते हुए भी हनुमानजी नतमस्तक हैं। वे ऐसा नहीं कहते कि 'ऐ बुढ़िया ! इतने सारे लोगों के सामने तू मेरी इज्जत को मिट्टी में मिलाती है? मैं तो यह चला....'

आज का कोई बेटा होता तो ऐसा कर सकता था किंतु हनुमानजी को तो मैं फिर-फिर से प्रणाम करता हूँ। आज के युवान-युवतियाँ हनुमानजी से सीख ले सकें तो कितना अच्छा हो?

मेरे जीवन में मेरे माता-पिता के आशीर्वाद और मेरे गुरुदेव की कृपा ने क्या-क्या दिया है उसका मैं वर्णन नहीं कर सकता हूँ। और भी कइयों के जीवन में मैंने देखा है कि जिन्होंने अपनी माता के दिल को जीता है, पिता के दिल की दुआ पायी है और सदगुरु के हृदय से कुछ पा लिया है उनके लिए त्रिलोकी में कुछ भी पाना कठिन नहीं रहा। सदगुरु तथा माता-पिता के भक्त स्वर्ग के सुख को भी तुच्छ मानकर परमात्म-साक्षात्कार की योग्यता पा लेते हैं।

माँ अंजना कहे जा रही थीं- "तुझे और तेरे बल पराक्रम को धिक्कार है। तू मेरा पुत्र कहलाने के लायक ही नहीं है। मेरा दूध पीने वाले पुत्र ने प्रभु को श्रम दिया? अरे, रावण को लंकासहित समुद्र में डालने में तू समर्थ था। तेरे जीवित रहते हुए भी परम प्रभु को सेतु-बंधन और राक्षसों से युद्ध करने का कष्ट उठाना पड़ा। तूने मेरा दूध लज्जित कर दिया। धिक्कार है तुझे ! अब तू मुझे अपना मुँह मत दिखाना।"

हनुमानजी सिर झुकाते हुए कहाः "माँ ! तुम्हारा दूध इस बालक ने नहीं लजाया है। माँ ! मुझे लंका भेजने वालों ने कहा था कि तुम केवल सीता की खबर लेकर आओगे और कुछ नहीं करोगे। अगर मैं इससे अधिक कुछ करता तो प्रभु का लीलाकार्य कैसे पूर्ण होता? प्रभु के दर्शन दूसरों को कैसे मिलते? माँ ! अगर मैं

प्रभु-आज्ञा का उल्लंघन करता तो तुम्हारा दूध लजा जाता। मैंने प्रभु की आज्ञा का पालन किया है माँ ! मैंने तेरा दूध नहीं लजाया है।"

तब जाबवंतजी ने कहाः "माँ ! क्षमा करें। हनुमानजी सत्य कह रहे हैं। हनुमानजी को आज्ञा थी कि सीताजी की खोज करके आओ। हम लोगों ने इनके सेवाकार्य बाँध रखे थे। अगर नहीं बाँधते तो प्रभु की दिव्य निगाहों से दैत्यों की मुक्ति कैसे होती? प्रभु के दिव्य कार्य में अन्य वानरों को जुड़ने का अवसर कैसे मिलता? दुष्ट रावण का उद्धार कैसे होता और प्रभु की निर्मल कीर्ति गा-गाकर लोग अपना दिल पावन कैसे करते? माँ आपका लाल निर्बल नहीं है लेकिन प्रभु की अमर गाथा का विस्तार हो और लोग उसे गा-गाकर पवित्र हों, इसीलिए तुम्हारे पुत्र की सेवा की मर्यादा बँधी हुई थी।"

श्रीरामजी ने कहाः "माँ ! तुम हनुमान की माँ हो और मेरी भी माँ हो। तुम्हारे इस सपूत ने तुम्हारा दूध नहीं लजाया है। माँ ! इसने तो केवल मेरी आज्ञा का पालन किया है, मर्यादा में रहते हुए सेवा की है। समुद्र में जब मैनाक पर्वत हनुमान को विश्राम देने के लिए उभर आया तब तुम्हारे ही सुत ने कहा था।

राम काजु कीन्हें बिनु मोहि कहाँ बिश्राम।।

मेरे कार्य को पूरा करने से पूर्व तो इसे विश्राम भी अच्छा नहीं लगता है। माँ ! तुम इसे क्षमा कर दो।"

रघुनाथ जी के वचन सुनकर माता अंजना का क्रोध शांत हुआ। फिर माता ने कहाः

"अच्छा मेरे पुत्र ! मेरे वत्स ! मुझे इस बात का पता नहीं था। मेरा पुत्र, मर्यादा पुरुषोत्तम का सेवक मर्यादा से रहे – यह भी उचित ही है। तूने मेरा दूध नहीं लजाया है, वत्स !"

इस बीच माँ अंजना ने देख लिया कि लक्ष्मण के चेहरे पर कुछ रेखाएँ उभर रही हैं कि 'अंजना माँ को इतना गर्व है अपने दूध पर?' माँ अंजना भी कम न थीं। वे तुरंत लक्ष्मण के मनोभावों को ताड़ गयीं।

"लक्ष्मण ! तुम्हें लगता है कि मैं अपने दूध की अधिक सराहना कर रही हूँ, किंतु ऐसी बात नहीं है। तुम स्वयं ही देख लो।" ऐसा कहकर माँ अंजना ने अपनी छाती को दबाकर दूध की धार सामनेवाले पर्वत पर फेंकी तो वह पर्वत दो टुकड़ों में बँट गया ! लक्ष्मण भैया देखते ही रह गये। फिर माँ ने लक्ष्मण से कहाः "मेरा यही दूध हनुमान ने पिया है। मेरा दूध कभी व्यर्थ नहीं जा सकता।"

हनुमानजी ने पुनः माँ के चरणों में मत्था टेका। माँ अंजना ने आशीर्वाद देते हुए कहाः "बेटा ! सदा प्रभु को श्रीचरणों में रहना। तेरी माँ ये जनकनंदिनी ही हैं। तू सदा निष्कपट भाव से अत्यंत श्रद्धा-भक्तिपूर्वक परम प्रभु श्री राम एवं माँ सीताजी की सेवा करते रहना।"

कैसी रही हैं भारत की नारियाँ, जिन्होंने हनुमानजी जैसे पुत्रों को जन्म ही नहीं दिया बल्कि अपनी शक्ति तथा अपने द्वारा दिये गये संस्कारों पर भी उनका अटल विश्वास रहा। आज की भारतीय नारियाँ इन आदर्श नारियों से प्रेरणा पाकर अपने बच्चों में हनुमानजी जैसे सदाचार, संयम आदि उत्तम संस्कारों का सिंचन करें तो वह दिन दूर नहीं, जिस दिन पूरे विश्व में भारतीय सनातन धर्म और संस्कृति की दिव्य पताका पुनः लहरायेगी।

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

अनुक्रम